दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री पुरुषेन्द्र कुमार कौरव

<u>रि.या.(सि.) 4006/2021 और सि.वि.आ. 12085/2021</u>

के बीच में:-

मास्टर सिंघम
आयु लगभग 10 वर्ष
वास्तविक अभिभावक द्वारा
श्री गौरव गोयल
19 सी/20ए ब्लॉक यूए,
जवाहर नगर -110007
में वर्तमान में निवास कर रहे हैं

.....याचिकाकर्ता

(द्वारा: श्री वैभव सेठी, सुश्री प्रिया पठानिया, श्री विख्यात ओबेरॉय, सुश्री जागृति पांडे, श्री ओनमीचोन रामलाल, श्री मोहित गर्ग, श्री राणा बेद, सुश्री दीक्षा कक्कड़ और श्री आदित्य खन्ना, अधिवक्तागण)

बनाम

शिक्षा निदेशालय
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार
प्राइवेट स्कूल शाखा
पुराना सचिवालय: दिल्ली 54
(शिक्षा) निर्देशक द्वारा ...प्रत्यर्थी सं. 1

संस्कृति स्कूल
डॉ. एस. राधाकृष्णनन मार्ग
चाणक्य पुरी, नई दिल्ली 110021
प्रधानाचार्य द्वारा ...प्रत्यर्थी सं. 2

(द्वारा: श्री संतोष कुमार त्रिपाठी,
रा.रा.क्षे.दि.रा.सर. के स्थायी अधिवक्ता सह
प्रत्यर्थी सं. 1 के अधिवक्तागण श्री अरुण पंवार,
श्री प्रद्युम्न राव और श्री उत्कर्ष सिंह,
प्रत्यर्थी सं. 2 के अधिवक्तागण श्री सिद्धार्थ नाथ, सुश्री खुशबू होरा और श्री अनुनेय चौधरी)

उद्घोषित किया गया: 05.12.2023

<u>निर्णय</u>

1. सत्यं वद,धर्मं चर, जिसका शाब्दिक अनुवाद "सत्य बोलें, धर्म (सच्चाई) के रास्ते पर चलें" है, जो तैत्तिरीय उपनिषद से संदर्भित है, जो भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली के दृढ़ विश्वास को दर्शाता है, निःसंदेह, ये सत्य के वे स्तंभ हैं जो शिक्षा की अधिसंरचना को मजबूत और उच्च बनाते हैं। यह भी एक सत्य है कि विद्या (शिक्षा) के अलावा कोई भी चीज मानव बुद्धि को परिष्कृत और विकसित नहीं कर सकती। आध्यात्मिक क्षेत्र में, यह स्वयं की मुक्ति की ओर ले जाता है और सांसारिक क्षेत्रों में, यह एक समग्र विकास और समृद्धि को समाहित करता है।

2. नैतिकता और सदाचार के उत्थान ने शिक्षा को शिखर तक पहुंचने के लिए प्रेरित किया है और यदि उक्त शर्तों को नकार दिया गया तो शिक्षा अपना उद्देश्य खो देगी। वास्तव में, एक समतावादी समाज का यह कर्तव्य है कि वह नैतिकता के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित, सभी के लिए उपलब्ध शिक्षा की ओर अग्रसर हो। इसलिए, शिक्षा के पवित्र स्रोत तक अत्यंत ईमानदारी के साथ पहुंचा जाना चाहिए और ऐसी पवित्रता को हटाने के किसी भी अतार्किक प्रयास की जांच और सुधार किया जाना चाहिए।

3. इसके विपरीत, वर्तमान मामला समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (ई.डब्ल्यू.एस.) को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का लाभ देने के लिए बनाई गई कल्याणकारी योजना पर स्पष्ट प्रहार की एक कष्टप्रद कहानी को पेश करता है। मौजूदा मामला, उस पीड़ादायक स्थिति को दर्शाता है जहां संपन्न वर्ग आर्थिक रूप से हाशिए पर रहने वाले उम्मीदवारों के अधिकार गबन कर ईडब्ल्यूएस आरक्षण का लाभ पाने के लिए खून, पसीना और आंसू बहा रहा है। इस मामले में सभी के लिए शिक्षा की प्रतिष्ठित संवैधानिक दृष्टि को नष्ट करने का एक सोचा-समझा प्रयास जांच के अधीन है।

4. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार, दिल्ली स्कूल शिक्षा नियमावली के नियम 43 सहपठित दिल्ली स्कूल शिक्षा अधिनियम, 1973 (1973 का 18) की धारा 3(1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्राप्त करने के लिए समाज के आर्थिक रूप से पददलित वर्गों से संबंधित छात्रों की

आकांक्षाओं को पूरा करने के उद्देश्य से नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के उपबंधों के अंतर्गत दिल्ली स्कूल शिक्षा (आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग और वंचित समूह के छात्रों के लिए निःशुल्क सीटें) आदेश, 2011 (इसके बाद '2011 आदेश' के रूप में संदर्भित) नामक एक आदेश पारित किया गया है जिसमें ऐसे छात्रों के लिए निशुल्क सीटें उपलब्ध कराई गई हैं। 2011 के आदेश के अनुसार, सभी स्कूलों से अपेक्षा की जाती है कि वे कक्षा एक में आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग से संबंधित बच्चों को उस कक्षा की कुल संख्या के कम से कम पच्चीस प्रतिशत की सीमा तक दाखिला दें और इसके पूरा होने तक नि:शुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करें।

5. उक्त आदेश के खंड 2(ग) में कमजोर वर्ग के बच्चे को परिभाषित किया गया है जिसके माता-पिता की सभी स्रोतों से कुल वार्षिक आय एक लाख रुपये से कम है और जो पिछले तीन वर्षों से दिल्ली में रह रहे हैं।

6. इस मामले में याचिकाकर्ता एक नाबालिग विधार्थी है जिसके पिता ने दिनांक 08.01.2013 को अपने बेटे के लिए संस्कृति स्कूल, नई दिल्ली में दाखिला पाने के लिए उपायुक्त (जिला नई दिल्ली) के कार्यालय में तहसीलदार द्वारा जारी अपेक्षित आय प्रमाण-पत्र प्राप्त किया। उक्त प्रमाण-पत्र में याचिकाकर्ता के पिता की सभी स्रोतों से वार्षिक आय 67,200/- रुपये आंकी गयी।

7. मामले के तथ्य बताते हैं कि याचिकाकर्ता ने अपने पिता के उपरोक्त आय प्रमाण-पत्र के आधार पर ई.डब्ल्यू.एस. के लिए कोटा का लाभ उठाते हुए वर्ष 2013 में प्रत्यर्थी सं. 2- स्कूल में प्रवेश लिया।

8. उपायुक्त (जिला नई दिल्ली) के कार्यालय में कार्यकारी दंडाधिकारी द्वारा जारी और सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और सेवा कर अपीलीय अधिकरण के न्यायिक सदस्य द्वारा विधिवत सत्यापित दिनांक 18.02.2012 का अधिवास प्रमाण-पत्र भी यह दिखाने के लिए प्रस्तुत किया गया था कि याचिकाकर्ता संजय कैंप, चाणक्यपुरी, दिल्ली में अपने माता-पिता के साथ रहता था।

9. प्रवेश के बाद, याचिकाकर्ता ने 2018 तक बिना किसी कठिनाई के ईडब्ल्यूएस श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में प्रत्यर्थी सं. 2- स्कूल में पढ़ाई जारी रखी। हालांकि, विवाद दिनांक 03.01.2018 को शुरू हुआ, जब याचिकाकर्ता के पिता ने याचिकाकर्ता के भाई के प्रवेश-पत्र के साथ प्रत्यर्थी सं. 2- स्कूल के प्रधानाचार्य को पत्र लिखा जिसमें याचिकाकर्ता की श्रेणी को ईडब्ल्यूएस से सामान्य श्रेणी में बदलने और याचिकाकर्ता के निवास के पते में बदलाव की मांग की गई। चूंकि उक्त पत्र ने प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल को चौंका दिया था, इसे प्रत्यर्थी सं. 1 शिक्षा निदेशालय (इसके बाद डीओई के रूप में) को भेज दिया गया था और तदनुसार, याचिकाकर्ता के पिता के आय प्रमाण-पत्र के बारे में जिला दंडाधिकारी, जामनगर हाउस, दिल्ली (जि.दं., जामनगर) से जांच का निर्देश दिया गया था। डीएम, जामनगर और एसडीएम, एमबी रोड, साकेत,

दिल्ली ने क्रमशः दिनांक 21.02.2018 और 07.03.2018 के पत्रों द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई को सूचित किया कि उक्त आय प्रमाण-पत्र इस कार्यालय द्वारा जारी किया गया पाया गया है।

10. हालांकि, प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल द्वारा थाना चाणक्यपुरी में याचिकाकर्ता के पिता के खिलाफ दिनांक 15/16.03.2018 को इस आधार पर एक शिकायत दर्ज की गई थी कि उनके द्वारा पेश की गई मतदाता पहचान पत्र की प्रति जाली थी क्योंकि यह मतदाता के रूप में पंजीकरण की सही तारीख को नहीं दर्शाता था। मुख्य निर्वाचन अधिकारी, कश्मीरी गेट के कार्यालय से दस्तावेजों की सत्यता की जांच करते समय यह पाया गया कि उक्त मतदाता पहचान पत्र दिनांक 13.02.2018 से पंजीकृत था न कि दिनांक 13.02.2016 से। बाद में उक्त शिकायत को एक प्राथमिकी सं. 0015/2018 के रूप में दर्ज किया गया।

11. प्राथमिकी के अनुसार, डीएम, जामनगर द्वारा दिनांक 27.03.2018 को एक रिपोर्ट दायर की गई और प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई को भेजी गई जिसमें कहा गया कि दिनांक 22.03.2018 को तहसीलदार और नागरिक सुरक्षा स्वयंसेवकों के साथ एसडीएम संजय कैंप, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली में दौरे के लिए गए थे। उक्त दौरे के दौरान, इन्होंनें 10 निवासियों के बयान दर्ज किए जिन्होंने बताया कि याचिकाकर्ता का परिवार कभी भी इस कैंप में नहीं रहा।

12. दिनांक 31.03.2018 को प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा आदेश पारित किया गया जिसके तहत याचिकाकर्ता का प्रवेश पहली बार रद्द कर दिया गया। जिला

दंडाधिकारी, नई दिल्ली की रिपोर्ट और पुलिस उपायुक्त (दक्षिण) की जांच रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि याचिकाकर्ता के जन्म प्रमाण-पत्र की तारीख धोखाधड़ी से प्राप्त की गई थी क्योंकि याचिकाकर्ता का जन्म प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल में प्रवेश प्राप्त करने के समय जमा प्रमाण-पत्र में उल्लिखित जन्म तिथि से सात महीने पहले हुआ था।

13. उक्त रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पिता द्वारा वास्तविक आय की गलत जानकारी देकर आय प्रमाण पत्र प्राप्त किया गया था, जिसके तहत उन्होंने सभी स्रोतों से अपनी कुल आय 67,200/- रुपये घोषित की थी। इसके विपरीत, डीसीपी (दक्षिण) की रिपोर्ट से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पिता की वर्ष 2012-13 के आयकर रिटर्न (आईटीआर) के अनुसार स्व-घोषित निजी आय 4,23,850/- रुपये थी।

14. यह भी पाया गया कि याचिकाकर्ता के माता और पिता संजय कैंप, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली में कभी नहीं रहे, जैसा कि स्कूल में प्रवेश के समय दावा किया गया था। एसडीएम (चाणक्यपुरी) की जांच रिपोर्ट के आधार पर 18.04.2018 को जिला दंडाधिकारी ने अधिवास प्रमाण पत्र के साथ-साथ आय प्रमाण पत्र को भी अमान्य घोषित कर दिया।

15. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने दिनांक 31.03.2018 के आदेश के माध्यम से अपने प्रवेश को रद्द करने के खिलाफ रि.या.(सि.) सं. 6572/2018 वाली पहली रिट याचिका पेश की जिसे दिनांक 02.07.2018 को अनुमति दी गई थी

क्योंकि रद्दकरण आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को कोई कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था। इसके बाद, प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई ने व्यक्तिगत सुनवाई की अनुमति देने के उद्देश्य से दिनांक 20.07.2018 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया जिसमें याचिकाकर्ता के पिता को यह बताने के लिए बुलाया गया कि याचिकाकर्ता का प्रवेश रद्द क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

16. हालांकि, दिनांक 13.08.2018 को, प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई ने उपरोक्त प्राथमिकी में प्राप्त स्थिति रिपोर्ट के आधार पर एक बार फिर याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द कर दिया। इस आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा दायर दूसरी रिट याचिका अर्थात रि.या.(सि.) 8791/2018 में आक्षेप किया गया था और उक्त रिट याचिका को दिनांक 07.01.2019 को नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर मामले के गुणागुण पर कोई टिप्पणी किए बिना अनुमति दी गई थी।

17. इसके बाद, दिनांक 24.01.2019 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसमें याचिकाकर्ता के पिता को यह बताने के लिए कहा गया कि याचिकाकर्ता का प्रवेश रद्द क्यों नहीं किया जाना चाहिए। इसी के अनुसरण में, प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा कई बार मीटिंग के रूप में व्यक्तिगत सुनवाई की व्यवस्था की गई ताकि याचिकाकर्ता और उसके पिता अपना मामला पेश कर सकें।

18. प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई ने उपरोक्त व्यक्तिगत सुनवाई में याचिकाकर्ता के पिता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विधिवत विचार करने के बाद, याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द करते हुए दिनांक 09.02.2021 को एक विस्तृत आदेश पारित किया। यह आदेश याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल द्वारा दिनांक 15.02.2021 के पत्र द्वारा सूचित किया गया था।

19. इसलिए, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा पारित कारण बताओ नोटिस दिनांक 24.01.2019 और परिणामी आदेश दिनांक 09.02.2021 के खिलाफ तत्काल रिट याचिका दायर की है जिससे याचिकाकर्ता का प्रवेश प्रत्यर्थी सं. 2- स्कूल द्वारा रद्द कर दिया गया है। याचिकाकर्ता तत्काल याचिका के माध्यम से प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल द्वारा दिनांक 15.02.2021 को जारी पत्र को भी चुनौती दे रहा है जिसमें प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता का प्रवेश दिनांक 31.03.2021 से रद्द कर दिया गया है।

<u>प्रस्तुतियाँ</u>

20. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है क्योंकि न तो याचिकाकर्ता और न ही उसके पिता को प्रभावी सुनवाई का अवसर दिया गया था। उनका कहना है कि उक्त आदेश प्रक्रियात्मक अनौचित्य से प्रभावित है क्योंकि याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द

करने का आदेश एक ऐसे प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था जिसने व्यक्तिगत सुनवाई नहीं की थी। उनके अनुसार, कोई भी प्राधिकारी जो सुनवाई के समय मौजूद नहीं था वास्तव में मामले को नए सिरे से सुने बिना आदेश पारित नहीं कर सकता है।

21. उनका कहना है कि वर्तमान मामले में रद्दकरण आदेश कानून की दृष्टि में अनुरक्षणीय होता केवल तभी जब परवर्ती अधिकारी ने मामले में नए सिरे से कार्यवाही की होती। विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करने के लिए ***ऑटोमोटिव टायर मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन बनाम नामित प्राधिकारी और अन्य व भारत संघ बनाम शिव राज*** के मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा जताया है कि उक्त आदेश अप्रासंगिक/दूषित है क्योंकि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन करता है।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि न तो कोई उचित कारण था और न ही प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई के पास आक्षेपित आदेश पारित करने का उचित अधिकार क्षेत्र है। याचिकाकर्ता का यह कहना है कि दिल्ली विद्यालय शिक्षा अधिनियम, 1973 की धारा 3 के तहत दिल्ली के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार नियम, 2011 के नियम 26 को अधिसूचना सं. 15 (172)/डीई/अधिनियम/2010/69 दिनांक 07.01.2011 के खंड 10 के सहपठन के अनुसार प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई को याचिकाकर्ता के

आवेदन पर कार्रवाई करने और आक्षेपित आदेश के स्वरूप की जांच करने की कोई शक्ति नहीं दी गई है।

23. उन्होंने आगे इस तथ्य पर जोर देने की कोशिश की कि याचिकाकर्ता के पिता का आय प्रमाण-पत्र संबंधित प्राधिकारी द्वारा बेलिफों द्वारा आवश्यक सत्यापन किए जाने के बाद विधिवत जारी किया गया था और इसलिए इसकी सत्यता पर सवाल उठाने का कोई कारण नहीं है। उनका तर्क है कि एक बार विभिन्न सरकारी कार्यालयों द्वारा उक्त प्रमाण-पत्र की प्रामाणिकता की पुष्टि की गई है तो उक्त दस्तावेज के झूठे होने के आधार पर याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द करना गलत है।

24. विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि यदि आय प्रमाण-पत्र के रद्दकरण का उक्त आरोप जिला दंडाधिकारी, नई दिल्ली जिले के दिनांक 18.04.2018 के पत्र पर आधारित है तो उक्त पत्र त्रुटिपूर्ण है क्योंकि यह स्वयं अन्य बातों के साथ-साथ तत्कालीन एसडीएम के बयान से अपना निष्कर्ष निकालता है कि उक्त प्रमाण-पत्र उपलब्ध दस्तावेजों के उचित सत्यापन के बाद ही जारी किया गया था।

25. विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि उक्त आय प्रमाण-पत्र की असत्यता इस आधार पर सिद्ध नहीं की जा सकती है कि याचिकाकर्ता के पिता ने वर्ष 2012-13 में भारत के बाहर विभिन्न यात्राएं कीं। उनके अनुसार, सभी कथित विदेश यात्राएं उनकी नौकरी के एक हिस्से के रूप

में आधिकारिक क्षमता में की गई थीं और संबंधित यात्राओं के दौरान किए गए खर्च उनके नियोक्ता द्वारा उठाए गए थे।

26. विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि आईटीआर दिनांक 31.03.2013 तक दायर किया गया था जबकि आय प्रमाण-पत्र दिनांक 08.01.2013 को जारी किया गया था जिसका अर्थ है कि आय प्रमाण-पत्र जारी करते समय संबंधित प्राधिकारी द्वारा 3 महीने की अतिरिक्त आय को ध्यान में नहीं रखा जा सकता है। चूंकि याचिकाकर्ता के पिता ने वित्तीय वर्ष 2010-11 और 2011-12 के लिए कोई कर योग्य आय अर्जित नहीं की इसलिए उन्होंने उसी अवधि के दौरान कोई आईटीआर दाखिल नहीं किया। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि इसके विपरीत किसी भी सबूत के अभाव में यह माना जाना चाहिए कि आय प्रमाण-पत्र असली था और किसी भी तरह से अवैध नहीं है।

27. याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवास प्रमाण-पत्र का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत किया कि उक्त प्रमाण-पत्र की सत्यता को अचानक से चुने गए कुछ लोगों की गवाही के आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है जबकि यह एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया हो। उनके अनुसार, मनमाने ढंग से चुने गए 10 व्यक्तियों के मुकाबले जारी करने वाले लोक प्राधिकारी को वरीयता दी जानी चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि संबंधित प्राधिकारी से बार-बार अनुरोध किए जाने के बावजूद

याचिकाकर्ता को उक्त व्यक्तियों से प्रतिपरीक्षा करने का कोई अवसर नहीं दिया गया और इस प्रकार ऐसे किसी भी उचित अवसर के अभाव में अधिवास प्रमाण पत्र की वास्तविकता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है।

28. उन्होंने यह भी कहा है कि याचिकाकर्ता को उसका जन्म प्रमाण-पत्र रद्द करने से पहले सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए था। उनके अनुसार, अगर याचिकाकर्ता को संबंधित प्राधिकारियों द्वारा अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए बुलाया गया होता तो वह उक्त जन्म प्रमाण-पत्र की सामग्री का विरोध करता। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता का प्रवेश वैध आधार पर मांगा गया था और प्रत्यर्थीगण के पास धोखाधड़ी के कथित कृत्य पर इसे रद्द करने का कोई ठोस कारण नहीं है।

29. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों का जोरदार विरोध किया। प्रत्यर्थी सं 1-डीओई के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रति शपथ-पत्र पर भरोसा करते हुए कहा कि तत्काल रिट याचिका झूठे, काल्पनिक और मनगढ़ंत बयानों और दस्तावेजों पर आधारित है। उनके अनुसार, याचिकाकर्ता के पिता की ओर से अवैध और धोखाधड़ी के कार्य के कारण प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई को प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल को यह घोषित करने का निर्देश देने के लिए मजबूर किया गया था कि याचिकाकर्ता का प्रवेश गलत बयानी द्वारा प्राप्त किया गया था और यह अवैध और आरम्भ से ही शून्य है।

30. उन्होंने कहा है कि याचिकाकर्ता के पिता ने राजस्व विभाग से आय प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के उद्देश्य से सभी स्रोतों से अपनी आय 67,200/- रुपये प्रति वर्ष होने का दावा करते हुए एक झूठी और कपटपूर्ण स्व-घोषणा की है जबकि उक्त वर्ष के लिए उसकी वास्तविक आय उक्त राशि से बहुत अधिक है। उनका तर्क है कि आय प्रमाण-पत्र के साथ-साथ अधिवास प्रमाण-पत्र तथ्यों की गलत बयानी के माध्यम से धोखाधड़ी से प्राप्त किए गए थे और इसलिए दोनों दस्तावेजों को सक्षम अधिकारियों द्वारा दिनांक 18.04.2018 और 07.05.2018 के आदेशों के माध्यम से रद्द कर दिया गया था।

31. प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई के विद्वान अधिवक्ता ने जिला दंडाधिकारी, नई दिल्ली की ओर से दायर दिनांक 27.04.2023 के शपथ-पत्र के माध्यम से इस न्यायालय को यह संकेत दिया कि आय के साथ-साथ अधिवास प्रमाण-पत्र को सक्षम प्राधिकारियों द्वारा विधिवत रद्द कर दिया गया था और इन्हीं के आधार पर याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द करने का निर्णय प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा लिया गया था। उक्त शपथ-पत्र के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं:

> *"9. यह प्रस्तुत किया गया है कि पत्र क्रमांक **एफ.सं. डीई/पीएसबी/2018/डब्ल्यूपीसी1372/2018/22469** दिनांक 19.02.2018 के माध्यम से उप निदेशक (पीएसबी) के अनुरोध पर जिला दंडाधिकारी, जिला नई दिल्ली ने श्री गौरव गोयल के संबंध में अधिवास प्रमाण-पत्र और आय प्रमाण-पत्र के संबंध में शिक्षा निदेशालय को दिनांक **27.03.2018** को **एफ.सं. (1405)/एसडीएम (चौधरी पुरी)/2017/1100-1101** चिन्हित वाली सत्यापन रिपोर्ट भेजी है। उक्त रिपोर्ट की प्रति एतद्द्वारा **अनुलग्नक "छ"** के रूप में दी गई है।*

10. यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिवास और आय प्रमाण पत्र के आवेदन और संबंधित दस्तावेजों के मिलने/खोजने योग्य होने के संबंध में संबंधित शाखाओं से रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद और सुश्री अंकिता आनंद, आईएएस, एसडीएम (चाणक्यपुरी) द्वारा आयोजित संबंधित स्थान के दौरे की सत्यापन रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 07.05.2018 को श्री आशीष शौकीन, कार्यकारी दंडाधिकारी ने श्री गौरव के अधिवास और आय प्रमाण-पत्र रद्द कर दिए हैं। आदेश दिनांक 07.05.2018 की प्रति ***अनुलग्नक "ज"*** *के रूप में है।*

11. यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिवास और आय प्रमाण-पत्र जारी करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन और संबंधित दस्तावेज सभी आवश्यक कदम उठाने के बाद नहीं मिल सके।

32. प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता ने अपने पिता द्वारा आय के झूठे प्रकटीकरण के माध्यम से ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत धोखाधड़ी से प्रवेश प्राप्त किया था और इस प्रकार, याचिकाकर्ता का प्रवेश स्कूल से रद्द कर दिया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि चूंकि याचिकाकर्ता के पिता का आय प्रमाण पत्र, स्कूल में याचिकाकर्ता द्वारा बिताए गए वर्षों के लिए, ईडब्ल्यूएस श्रेणी के लाभों का लाभ उठाने के लिए पर्याप्त पात्रता के अनुरूप नहीं है, इसलिए याचिकाकर्ता का प्रवेश केवल इस एकमात्र आधार पर रद्द किया जा सकता है।

33. उन्होंने आगे प्रतिविरोध किया कि याचिकाकर्ता ने एक योग्य उम्मीदवार की कीमत पर धोखाधड़ी से शिक्षा प्राप्त की है और मामले को लंबा खींचने के उद्देश्य से बार-बार प्रक्रियात्मक आधारों को उठाया है। उनके अनुसार, आक्षेपित आदेश दिनांक 09.02.2021 में उल्लिखित आय को सही मानने के आधार पर

इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.09.2022 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता द्वारा पहले ही धोखाधड़ी को स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि धोखाधड़ी को छिपाने और न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आक्षेपित आदेश को बरकरार रखा जाना चाहिए।

34. प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल के विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि आक्षेपित आदेश किसी भी तथ्यात्मक या विधिक दौर्बल्य से ग्रस्त नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता के पिता की आय दिनांक 13.09.2022 को बोर्ड को सौंपे गए प्रासंगिक आईटीआर के अनुसार सभी स्रोतों से 1,00,000/- रुपये की सीमा राशि से काफी अधिक थी जिससे याचिकाकर्ता ईडब्ल्यूएस श्रेणी में प्रवेश के लिए अयोग्य हो गया। उन्होंने कहा कि चूंकि याचिकाकर्ता ने पूर्वोक्त आदेश में वास्तविक आय को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है इसलिए मौजूदा मामले में तथ्य और स्थिति याचिकाकर्ता द्वारा दायर पिछली रिट याचिकाओं के तथ्यों से अलग हैं जहां याचिकाकर्ता द्वारा किए गए गलत काम कभी स्वीकार नहीं किये गए थे। इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उनके पास अपेक्षित और ठोस सामग्री थी जिसमें माना गया था कि याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल में प्रवेश पाने के लिए महत्वपूर्ण दस्तावेजों को जाली बनाया और गंभीर धोखाधड़ी में लिप्त रहा।

35. विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करने के लिए ***मोहम्मद सरताज और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य*** व ***यूपी राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह और अन्य 4*** के मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया कि जब तथ्यों को स्वीकार किया जाता है या निर्विवाद किया जाता है तो न्यायालय प्राकृतिक न्याय के पालन को मजबूर करने के लिए अपनी रिट जारी नहीं कर सकता है जब यह व्यर्थ हो और उक्त सिद्धांत केवल वहीं लागू हो सकता है जहां पक्षकारगण के लिए वास्तविक पूर्वाग्रह होता है। इसलिए, प्रत्यर्थीगण का मामला यह है कि चूंकि विवाद का प्राथमिक तर्क अर्थात याचिकाकर्ता के पिता की वास्तविक आय याचिकाकर्ता द्वारा पूरी तरह से स्वीकार की गई है इसलिए मामले में पूर्वाग्रह का कोई सवाल ही नहीं है जो याचिकाकर्ता को अपनी शिकायत को कम करने के लिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को लागू करने के लिए बाध्य करेगा।

36. आगे उन्होंने प्रस्तुत किया कि यहां तक कि अगर यह माना जाता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू होते हैं तो याचिकाकर्ता के पिता को आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले अपना मामला पेश करने के लिए दी गई व्यक्तिगत सुनवाई की श्रृंखला से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को किसी भी प्रभावी सुनवाई से वंचित नहीं किया गया है। सक्षम प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश पारित करने के प्रश्न के संबंध में उनका कहना है कि सरकारी विभाग में बहुत सामान्य रूप से विभागीय

स्थानांतरण होता है और यदि हर बार अधिकारियों के फेरबदल के बाद सुनवाई फिर से शुरू करनी पड़ती है तो कोई निर्णय नहीं निकल पाएगा।

37. विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि प्रारंभिक बैठकें करने वाले से अलग एक अधिकारी द्वारा आदेश जारी करने से कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है चूँकि अपनी प्रस्तुतियों को पुष्ट करने के लिए ***ओसैन एंड जिलेटिन मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया बनाम मोदी अल्कलीज एंड केमिकल्स लिमिटेड और अन्य*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय और ***रोनपाल बायोटेक प्राइवेट लिमिटेड बनाम नई दिल्ली नगरपालिका परिषद और अन्य*** शीर्षक वाली रि.या. 3642/2020 में इस न्यायालय द्वारा पारित एक निर्णय पर भरोसा किया है।

38. प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल के विद्वान अधिवक्ता प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के अनुच्छेद ग(ii) का उल्लेख करते हुए इंगित करते हैं कि जब दस्तावेजों का सत्यापन किया गया था तो यह पुष्टि की गई थी कि याचिकाकर्ता के पिता के पास दो पैन कार्ड थे। चूंकि आईटीआर केवल एक पैन कार्ड से संबंधित है इसलिए पूरी संभावना है कि वास्तविक आय का पता नहीं लगाया जा सका होगा। प्रत्यर्थीगण के अनुसार यह मान लेना अत्यधिक अविश्वसनीय और अस्वाभाविक है कि याचिकाकर्ता के पिता की आय लगभग तीन महीने की अवधि में छह गुना बढ़ गई थी, यानी, उस अंतराल की अवधि

में जब आय प्रमाण-पत्र जारी किया गया था और आईटीआर दाखिल किया गया था।

39. उन्होंने आगे कहा कि जिला दंडाधिकारी, नई दिल्ली द्वारा डीसीपी, नई दिल्ली जिला को जारी दिनांक 18.04.2018 के आदेश में आय प्रमाण-पत्र को अमान्य घोषित कर दिया गया। उक्त आदेश में यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता का प्रवेश महत्वपूर्ण तथ्यों की गलत बयानी पर आधारित था। प्रत्यर्थीगण द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चूंकि उक्त आदेश को याचिकाकर्ता ने कभी चुनौती नहीं दी थी इसलिए इसने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है और यह केवल प्रत्यर्थी सं.1-डीओई द्वारा पारित एक तर्कसंगत आदेश का समर्थन करता है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा जिन कुछ प्रमाण-पत्रों पर भरोसा किया गया है वे केवल आय प्रमाण-पत्र की वास्तविकता को प्रमाणित करते हैं और चूंकि आय प्रमाण-पत्र स्वयं धोखाधड़ी से प्राप्त हुआ पाया गया है इसलिए उक्त प्रमाणपत्रों में से कोई भी याचिकाकर्ता के मामले को आगे नहीं बढ़ाएगा।

40. उनके अनुसार, अधिवास प्रमाण-पत्र को रद्द करने के आदेश को भी याचिकाकर्ता द्वारा आज तक चुनौती नहीं दी गई है और किसी भी स्थिति में वर्तमान मामले में मुख्य विवाद आय प्रमाण-पत्र है जिसका अवैध रूप से प्रवेश प्राप्त करने के लिए उपयोग किया गया है और इसलिए अन्य सभी दस्तावेज उसी के लिए सहायक हैं।

41. मैंने पक्षकारगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता की दी गई प्रस्तुतियां सुनी और अभिलेख का अवलोकन किया।

<u>मुद्दे</u>

42. जो प्रश्न विचारणीय हैं उन्हें इस प्रकार अंकित किया गया है:-

I. क्या याचिकाकर्ता ने दुर्भावनापूर्ण तरीके से और गंभीर धोखाधड़ी या गलत बयानी में शामिल होकर ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत प्रवेश प्राप्त किया?

II. क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 का दायरा, न्यायसंगत और विवेकाधीन होने के कारण, दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के पक्ष में उपयोग किया जा सकता है?

III. क्या याचिकाकर्ता को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों, विशेष रूप से दूसरे पक्ष को भी सुनने के नियम के अनुरूप प्रभावी सुनवाई का अवसर दिया गया था?

<u>विश्लेषण</u>

43. तत्काल मामले के न्यायनिर्णयन के लिए उपर्युक्त मुद्दों पर विचार करने से पहले उस संक्षिप्त यात्रा का पता लगाना महत्वपूर्ण है जिसके कारण 2011 का आदेश पारित हुआ। वर्ष 1993 में, ***उन्नीकृष्णन जेपी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने शिक्षा

के अधिकार को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से आने वाले मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी।

44. हालाँकि, यह वर्ष 2002 में लाया गया 86वां संवैधानिक संशोधन था जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में अनुच्छेद 21-क को सम्मिलित किया गया और 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने का मार्ग प्रशस्त हुआ। उक्त संशोधन के अनुसरण में नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम (इसके बाद आरटीई अधिनियम के रूप में संदर्भित) वर्ष 2009 में पारित किया गया था जो 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ।

45. आरटीई अधिनियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-क के तहत परिकल्पित छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधिनियमित किया गया था। आरटीई विधेयक, 2008 के उद्देश्य और कारण इस प्रकार है:

> *"सभी के लिए समान अवसरों के प्रावधान के माध्यम से लोकतंत्र के सामाजिक ताने-बाने को मजबूत करने के लिए सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को हमारे गणतंत्र की स्थापना के बाद से स्वीकार किया गया है। हमारे संविधान में उल्लिखित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में यह निर्धारित किया गया है कि राज्य चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएगा। पिछले कुछ वर्षों में देश में प्राथमिक विद्यालयों का महत्वपूर्ण स्थान संबंधी और संख्यात्मक विस्तार हुआ है फिर भी सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा का लक्ष्य हमसे दूर है। प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने से पहले स्कूल छोड़ने वाले बच्चों*

विशेषकर लाभवंचित समूहों और कमजोर वर्गों के बच्चों की संख्या बहुत अधिक है। इसके अलावा, प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने वाले बच्चों के मामले में भी अध्ययन परिणाम की गुणवत्ता हमेशा पूरी तरह से संतोषजनक नहीं होती है|

2. संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा समाविष्ट अनुच्छेद 21क में छह से चौदह वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को एक मौलिक अधिकार के रूप में नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उस ढंग से प्रदान करने का प्रावधान है जैसा राज्य विधि द्वारा निर्धारित करे।

3. परिणामस्वरूप, नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार विधेयक, 2008 को अधिनियमित किए जाने का प्रस्ताव है जिसमें यह प्रावधान है कि

(क) प्रत्येक बच्चे को कतिपय आवश्यक मानदंडों और मानकों को पूरा करने वाले औपचारिक स्कूल में संतोषजनक और समान गुणवत्ता वाली पूर्णकालिक प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने का अधिकार है;
(ख) "अनिवार्य शिक्षा" समुचित सरकार पर दाखिले, उपस्थिति और प्रारंभिक शिक्षा को पूरा करने की व्यवस्था करने और सुनिश्चित करने का दायित्व डालती है;
(ग) 'निशुल्क शिक्षा' का अर्थ है कि ऐसे बच्चे के अलावा कोई भी बच्चा, जिसे उसके माता-पिता द्वारा ऐसे स्कूल में दाखिल किया गया है जो समुचित सरकार द्वारा समर्थित नहीं है, किसी भी प्रकार की फीस या शुल्क या खर्च का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा जो उसे प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने और पूरा करने से रोक सकता है;
(घ) नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने में उपयुक्त सरकारों, स्थानीय प्राधिकरणों, माता-पिता, स्कूलों और शिक्षकों के कर्तव्य और जिम्मेदारियां; और
(ङ) बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक प्रणाली और एक विकेन्द्रीकृत शिकायत निवारण तंत्र।

4. प्रस्तावित विधान इस विश्वास पर आधारित है कि समानता, सामाजिक न्याय और लोकतंत्र के मूल्यों और एक न्यायपूर्ण और मानवीय समाज का निर्माण केवल सभी के लिए समावेशी प्रारंभिक शिक्षा के प्रावधान के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए, लाभों से वंचित और कमजोर वर्गों के बच्चों को संतोषजनक गुणवत्ता की नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना न केवल उपयुक्त सरकारों द्वारा संचालित या समर्थित स्कूलों की जिम्मेदारी है बल्कि उन स्कूलों की भी जिम्मेदारी है जो सरकारी फंड पर निर्भर नहीं हैं।

5. अत: संविधान के अनुच्छेद 21क में यथा परिकल्पित एक उपयुक्त विधान अधिनियमित करना समीचीन और आवश्यक है।

6. विधेयक इस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहता है।"

46. आरटीई अधिनियम की धारा 2(ढ़) 'स्कूल' को इस प्रकार परिभाषित करती है:

"(ढ) "विद्यालय" से प्रारंभिक शिक्षा देने वाला कोई मान्यताप्राप्त विद्यालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत निम्नलिखित भी हैं :-

(i) समुचित सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा स्थापित, उसके स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन कोई विद्यालय;
(ii) समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी से अपने संपूर्ण व्यय या उसके भाग की पूर्ति करने के लिए सहायता या अनुदान प्राप्त करने वाला कोई सहायताप्राप्त विद्यालय;
(iii) विनिर्दिष्ट प्रवर्ग का कोई विद्यालय; और
(iv) समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी से अपने संपूर्ण व्यय या उसके भाग की पूर्ति करने के लिए किसी प्रकार की सहायता या अनुदान प्राप्त न करने वाला कोई गैर-सहायताप्राप्त विद्यालय;

47. आरटीई अधिनियम की धारा 12 आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के लिए पच्चीस प्रतिशत सीटों के आरक्षण सहित नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए स्कूल की जिम्मेदारी की सीमा से संबंधित है, जो निम्नानुसार है:

> ***"12. निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए विद्यालय के उत्तरदायित्व की सीमा***
>
> *(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, -*
>
> *(क) धारा 2 के खंड (ढ़) के उप-खंड (i) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय, उसमें प्रविष्ट सभी बालकों को निशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करेगा;*
>
> *(ख) धारा 2 के खंड (ढ़) के उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय, उसमें प्रवेश कराए गए बालकों के ऐसे अनुपात को, जो इस प्रकार प्राप्त उसकी वार्षिक आवर्ती सहायता या अनुदान का, उसके वार्षिक आवर्ती व्यय से, न्यूनतम पच्चीस प्रतिशत के अधीन रहते हुए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराएगा;*
>
> *(ग) धारा 2 के खंड (ढ़) के उपखंड (iii) और उपखंड (iv) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय पहली कक्षा में, आसपास में दुर्बल वर्ग और अलाभित समूह के बालकों को, उस कक्षा के बालकों की कुल संख्या के कम से कम पच्चीस प्रतिशत की सीमा तक प्रवेश देगा और निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, उसके पूरा होने तक, प्रदान करेगा :*
>
> *परंतु यह और कि जहां धारा 2 के खंड (ढ़) में विनिर्दिष्ट कोई विद्यालय, विद्यालय पूर्व शिक्षा देता है वहां खंड (क) से खंड (ग) के उपबंध ऐसी विद्यालय पूर्व शिक्षा में प्रवेश को लागू होंगे।*
>
> *(2) उपधारा (1) के खंड (ग) में यथाविनिर्दिष्ट निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने वाले धारा 2 के खंड (ढ) के उपखंड (iv) में विनिर्दिष्ट विद्यालय की, उसके द्वारा इस प्रकार उपगत व्यय की, राज्य द्वारा उपगत प्रति बालक व्यय की सीमा तक या बालक से प्रभारित*

वास्तविक रकम तक, इनमें से जो भी कम हो, ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, प्रतिपूर्ति की जाएगी :

परंतु ऐसी प्रतिपूर्ति धारा 2 के खंड (ढ़) के उपखंड (i) में विनिर्दिष्ट किसी विद्यालय द्वारा उपगत प्रति बालक व्यय से अधिक नहीं होगी :

परंतु यह और कि जहां ऐसा विद्यालय उसके द्वारा कोई भूमि, भवन, उपस्कर या अन्य सुविधाएं, या तो निःशुल्क या रियायती दर पर, प्राप्त करने के कारण पहले से ही विनिर्दिष्ट संख्या में बालकों को निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने की बाध्यता के अधीन है, वहां ऐसा विद्यालय ऐसी बाध्यता की सीमा तक प्रतिपूर्ति के लिए हकदार नहीं होगा।

(3) प्रत्येक विद्यालय ऐसी जानकारी जो, यथास्थिति, समुचित सरकार या स्थानीय प्राधिकारी द्वारा अपेक्षित हो, उपलब्ध कराएगा।"

48. आरटीई अधिनियम में व्यक्त विधायी ज्ञान एक व्यक्ति और सभी के लिए समान अवसर के संवैधानिक वचन में अपना स्रोत पाता है। "स्कूल" की एक विस्तृत परिभाषा मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अशर्त वचन के साथ मिलकर विधायिका के व्यावहारिक दृष्टिकोण को इंगित करती है। जहां तक शिक्षा तक पहुंच का सवाल है, आरटीई अधिनियम का उद्देश्य आर्थिक कमजोरी से उत्पन्न हुए मतभेदों या बाधाओं से अप्रभावित एक समान प्रभाव पैदा करना है। जहां तक शिक्षा तक पहुंच का सवाल है, आरटीई अधिनियम का उद्देश्य आर्थिक अभाव से उत्पन्न हुए मतभेदों या बाधाओं से अप्रभावित एक समान प्रभाव पैदा करना है।

49. इसके अतिरिक्त, शिक्षा का अधिकार अधिनियम की धारा 38 समुचित सरकार को शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के

लिए नियम बनाने हेतु सक्षम बनाती है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार, जो वर्तमान मामले में उचित सरकार है, ने आरटीई अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए वर्ष 2011 का आदेश पारित किया।

50. इस मामले में याचिकाकर्ता का मुख्य जोर इस पर है कि उसे प्रत्यर्थीगण द्वारा निष्पक्ष सुनवाई का अपेक्षित अवसर नहीं दिया गया है और इस प्रकार, प्राकृतिक न्याय की हत्या के मद्देनजर दिनांक 09.02.2021 का आक्षेपित आदेश कानून की नजर में गैर-मौजूद है क्योंकि सुनवाई केवल एक औपचारिकता मात्र थी। उनके अनुसार, उन्हें अपने मामले को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर कभी नहीं दिया गया था और जिन सुनवाई में उन्हें बुलाया गया था वे कानून की उचित प्रक्रिया के विरुद्ध स्पष्ट रूप से दिखावटी कोशिशें थीं। हालांकि, उपरोक्त तर्क की जांच करने की दिशा में आगे बढ़ने से पहले याचिकाकर्ता की ओर से दुर्भावना की मौजूदगी को निर्धारित करने के लिए मामले के जटिल तथ्यात्मक पहलू की गहन जांच करना उचित है और क्या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायसंगत क्षेत्राधिकार का आह्वान करना अनुबद्ध है।

<u>मुद्दा I</u>

51. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने आय प्रमाण-पत्र सहित फर्जी दस्तावेज जमा करके गुप्त तरीके से प्रवेश प्राप्त किया था जिसका असली होना ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत प्रवेश

पाने में सबसे महत्वपूर्ण है। प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा पारित दिनांक 09.02.2021 का आक्षेपित आदेश जो प्रत्यर्थीगण के अनुसार याचिकाकर्ता के पिता की ओर से गंभीर धोखाधड़ी का एक स्पष्ट मामला स्थापित करता है, इस प्रकार है:

> *"23. अभिलेख पर मौजूद सामग्री के आधार पर और दिनांक 27.03.2019 के उत्तर को देखने के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि:*
>
> *I. श्री गौरव गोयल ने अपनी वास्तविक कुल आय को गलत तरीके से प्रस्तुत करके और छिपाकर और जानबूझकर आवासीय पते, गलत/नकली जन्म प्रमाण पत्र की झूठी घोषणा करके झूठे आधार पर प्राप्त दस्तावेजों के आधार पर शैक्षणिक सत्र 2013-14 में ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत अपने बच्चे मास्टर सिंघम का प्रवेश प्राप्त किया है और इसलिए उन्होंने न केवल धोखाधड़ी की है बल्कि संस्कृति स्कूल, चाण्क्य पुरी, नई दिल्ली में शैक्षणिक सत्र 2013-14 के लिए ईडब्ल्यूएस/डीजी श्रेणी के तहत आरक्षित सीट के लिए एक पात्र बच्चे के मौलिक अधिकार का भी अतिक्रमण किया है।*
>
> *II. वर्तमान मामला श्री गौरव गोयल द्वारा की गई धोखाधड़ी में से एक है जिसके तहत एक सीट जो अन्यथा एक पात्र ईडब्ल्यूएस छात्र को मिल सकती थी उन्होंने उस पर अपने वार्ड मास्टर सिंघम के लिए प्रभावी रूप से कब्ज़ा किया था।*
>
> *III. वास्तव में, वर्ष 2013 में ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत अपने वार्ड मास्टर सिंघम के लिए प्रवेश प्राप्त करने के समय श्री गौरव गोयल द्वारा प्रस्तुत आय प्रमाण-पत्र और जन्म प्रमाण-पत्र की तारीख सभी को बाद में संबंधित सरकारी अभिकरण द्वारा रद्द कर दिया गया है।*
>
> *IV. छात्र के प्रवेश को रद्द करना धोखाधड़ी का पता लगाने के लिए केवल एक अपरिहार्य परिणाम है और इस तरह के अभ्यासों से सख्ती से निपटा जाना चाहिए, अन्यथा इससे ऐसी ही सोच रखने वाले अन्य लोगों को भी बल मिलेगा और यह कृत्य समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों से आने*

वाले छात्रों को शिक्षा का अधिमान्य अधिकार प्रदान करने के आशय और उद्देश्य को पूरी तरह से नकार देंगे।

V. यह कहना पर्याप्त है कि श्री गौरव गोयल ने अपनी वास्तविक कुल आय को गलत तरीके से प्रस्तुत किया और छुपाया और जानबूझकर आवासीय पते, जन्म प्रमाण-पत्र की झूठी घोषणा की जिसके परिणामस्वरूप जिसमें उन्होंने न केवल धोखाधड़ी की बल्कि एक अन्य आर्थिक रूप से वंचित बच्चे को उक्त स्कूल में दाखिला लेने से भी रोका। यदि इस तरह के प्रवेश को रद्द नहीं किया जाता है और बच्चे को ईडब्ल्यूएस श्रेणी के बजाय सामान्य श्रेणी के तहत भर्ती कर लिया जाए तो यह बेईमान माता-पिता को अपने बच्चों के लिए, ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत प्रवेश प्राप्त करने के लिए खुली छूट प्रदान करेगा और धोखाधड़ी का पता चलने पर दावा करेगा कि प्रवेश को बरकरार रखा जाए, लेकिन सामान्य श्रेणी के तहत।"

52. भारत का संविधान विभिन्न श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए विशेष उपाय निर्धारित करता है। मूल रूप से, हमने समाज के सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण को मान्यता दी थी। हालांकि, 103$^{वें}$ संशोधन के प्रख्यापन के बाद संविधान ने विशुद्ध रूप से आर्थिक आधार पर आरक्षण के लिए जगह बनाई। ईडब्ल्यूएस आरक्षण नीति का सार आय की मात्रा में निहित है। इसलिए, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अन्य सभी दस्तावेजों के अलावा यदि प्रवेश के समय याचिकाकर्ता के पिता द्वारा प्रस्तुत आय प्रमाण-पत्र स्वयं कानून के अनुसार अस्वीकार्य है तो आवश्यक परिणाम संबंधित बच्चे के प्रवेश को रद्द करना है। याचिकाकर्ता के पिता का उक्त आय प्रमाण-पत्र दिनांकित 08.01.2013 इस प्रकार है:

"उपायुक्त का कार्यालय (नई दिल्ली जिला), दिल्ली

क्र.सं. 7/23/2418/12/12/2012/0321012860/108
तिथि 08.01.2013

<u>आय प्रमाण-पत्र</u>

श्री गौरव पुत्र श्री अवनीत, निवासी ए-154, ब्लॉक एस-117, संजय कैंप, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली द्वारा अधोहस्ताक्षरी के समक्ष दायर शपथपत्र/दस्तावेजों के आधार पर और बेलीफ/फील्ड स्टाफ आदि द्वारा प्रस्तुत सत्यापन और जांच रिपोर्ट के मद्देनजर श्री/सुश्री गौरव की सभी स्रोतों से वार्षिक आय 67,200/- (साठ हजार और दो सौ मात्र) आंकी गई है।

स्कूल प्रवेश के उद्देश्य से प्रमाण-पत्र जारी किया जाता है।

प्रमाण-पत्र जारी होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के लिए वैध है।"

53. आय प्रमाण-पत्र की अंतर्वस्तु दर्शाती है कि प्रवेश के समय याचिकाकर्ता के पिता की आय 67,200/- रुपये प्रति वर्ष आंकी गई थी।

54. हालांकि, यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता के पिता ने खुद इस न्यायालय के समक्ष स्वीकार किया है कि उक्त वर्ष और बाद के वर्ष के लिए उनकी आय ईडब्ल्यूएस श्रेणी में प्रवेश के लिए आवश्यक सीमा से अधिक थी। इस न्यायालय का आदेश दिनांकित 13.09.2022 जिसके तहत याचिकाकर्ता के पिता ने स्वीकार किया है कि उसकी आय ईडब्ल्यूएस श्रेणी में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक प्रारंभिक आय से काफी अधिक है इस प्रकार है:

"1. दिनांक 07 सितंबर, 2022 के आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजेश यादव ने निर्देशों पर कहा कि याचिकाकर्ता की आय से संबंधित दिनांक 09 फरवरी, 2021 के आक्षेपित आदेश के अनुच्छेद 22 में उल्लिखित आंकड़े सही हैं। निर्धारण वर्ष 2010-11, 2013-14, 2014-15 और 2015-16 के लिए आयकर रिटर्न की प्रतियां श्री यादव के

सहायक अधिवक्ता श्री वैभव सेठी द्वारा बोर्ड में सौंपी गईं, अभिलेख पर रखी गई हैं। न्यायालय के एक प्रश्न पर, यह सूचित किया गया है कि शून्य आय के कारण निर्धारण वर्ष 2011-12 और 2012-13 के लिए कोई आयकर रिटर्न दायर नहीं किया गया था। उक्त बयान को भी अभिलेख पर लाया गया है।

2. यह निर्देश दिया गया है कि याचिकाकर्ता सुनवाई की अगली तिथि पर न्यायालय में उपस्थित रहेंगे|

3. 12 अक्टूबर, 2022 को सूचीबद्ध किया गया|"

55. दिनांक 09.02.2021 के आक्षेपित आदेश के अनुच्छेद सं. 22 के प्रासंगिक भाग को उद्धृत करना उपयुक्त है, जो इस प्रकार है:

ख. ईडब्ल्यूएस श्रेणी में अपने पहले बच्चे के प्रवेश के दौरान, श्री गौरव गोयल ने तहसीलदार, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली द्वारा जारी आय प्रमाण पत्र दिनांक 08.01.2013 को प्रस्तुत किया, जिसमें दावा किया गया कि वह सभी स्रोतों से केवल 67,200/- रुपये की कुल वार्षिक आय वाला ईडब्ल्यूएस श्रेणी का आवेदक है। जबकि, निर्धारण वर्ष 2013-14 (वित्तीय वर्ष 2012-13) के लिए श्री गौरव गोयल (पैन सं. एओटीपीजी9631ई) द्वारा दायर आयकर रिटर्न में श्री गौरव गोयल ने अपनी कुल आय 4,23,850/- रुपये घोषित की है, जिसमें से उसने 28,530/- रुपये आयकर का भुगतान किया है और 1,890/- रुपये का रिफंड प्राप्त किया है। इससे पता चलता है कि उसने गलत घोषणा के आधार पर और कपटपूर्ण तरीके से आय प्रमाण पत्र प्राप्त किया था। इसके अलावा, आयकर के अभिलेख से, यह पता चला है कि श्री गौरव गोयल ने निम्नलिखित आयकर रिटर्न दाखिल किए हैं:

वित्तीय वर्ष	*निर्धारण वर्ष*	*घोषित राशि*	*कर भुगतान*	*रिफंड*
2009-10	*2010-11*	*1,46,550/-*	*--*	*--*
2012-13	*2013-14*	*4,23,850/-*	*28,530/-*	*1890/-*
2013-14	*2014-15*	*9,14,260/-*	*1,31,596/-*	*12,230/-*
2014-15	*2015-16*	*7,35,000/-*	*75,250/-*	*650/-*

56. वर्तमान मामले के तथ्यात्मक पहलू से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पिता द्वारा प्रस्तुत आय प्रमाण पत्र, जो याचिकाकर्ता की वांछित श्रेणी में प्रवेश प्राप्त करने के लिए अनिवार्य था सक्षम प्राधिकारी के एक आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था। यह भी एक नियति है कि उक्त प्रमाण-पत्र के रद्दकरण को आज तक चुनौती नहीं दी गई है और इस प्रकार इसे अंतिम रूप दिया गया है। ***सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया बनाम मधुलिका गुरुप्रसाद दहिर***[7] के मामले में जहां एक कर्मचारी को नकली जाति प्रमाण-पत्र के आधार पर नियुक्त किया गया था, जिसे बाद में जांच समिति द्वारा रद्द कर दिया गया था, इस न्यायालय की राय थी कि चूंकि उक्त आदेश को रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए इसे अंतिम रूप दिया गया था। प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार है:

> *"11. उपरोक्त तथ्यों का क्रम और विवरण हमारे मन में थोड़ा संदेह पैदा करता है कि जिस जाति प्रमाण-पत्र के आधार पर कर्मचारी को रोजगार मिला, वह उसकी जानकारी में गलत था। उसके आधार पर जांच समिति ने उच्च न्यायालय द्वारा रिमांड के बाद पुनर्विचार करने पर, दिनांक 29-5-2003 के आदेश के तहत, कर्मचारी के जाति प्रमाण-पत्र को फिर से अमान्य कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 28-6-2003 के आदेश द्वारा सेवाओं को समाप्त कर दिया गया। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है,*

जांच समिति के उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी गई है, इसे अंतिम रूप दे दिया गया है और यह लागू रहेगा। इस प्रकार, यह केवल दावे को अस्वीकार करने का मामला नहीं है और उद्धृत प्राधिकारी अनुपयुक्त हैं।"

57. इसलिए, एकमात्र वैध दस्तावेज जो आय प्रमाण पत्र प्राप्त करने का आधार हो सकता है, वह याचिकाकर्ता के पिता द्वारा दायर किया गया आईटीआर है। यदि याचिकाकर्ता के पिता की घोषित आय को उपरोक्त तालिका से देखा जाता है, जिसे न्यायिक अभिलेख में स्वीकार किया गया है, तो यह निश्चित हो जाता है कि वास्तविक आय 2011 के आदेश के खंड 2(ग) के अनुसार सीमा से असाधारण रूप से अधिक थी।

58. 2011 के आदेश के खंड 6 के परंतुक के आदेश के अनुसार, कमजोर वर्ग से संबंधित बच्चे को मुफ्त सीट पर प्रवेश के बाद स्कूल में मुफ्त सीट पर बने रहने के लिए हर साल शपथ पत्र पर वार्षिक आय की स्व-घोषणा प्रस्तुत करनी होगी। उपरोक्त तालिका के अवलोकन मात्र से संकेत मिलता है कि बाद के वर्षों के लिए अकेले याचिकाकर्ता के पिता की आय लगातार आवश्यक सीमा से अधिक थी और इस प्रकार, याचिकाकर्ता ईडब्ल्यूएस श्रेणी के लिए आरक्षित सीटों पर किसी भी अधिकार का दावा करने का हकदार नहीं था। साथ ही, याचिकाकर्ता के पिता द्वारा लिया गया यह रुख कि उनकी आय में आसमान छूती वृद्धि आय प्रमाण-पत्र जारी करने और आईटीआर दाखिल करने की अंतराल अवधि (सर्वोत्तम तीन महीने की अवधि) के दौरान हुई थी, *प्रथम दृष्टया* एक धोखा है जो वास्तविकता से कोसों दूर लगता है।

59. उपरोक्त तथ्यों और याचिकाकर्ता के पिता द्वारा की गई न्यायिक स्वीकारोक्ति के आलोक में यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने अपने पिता की आय जो ईडब्ल्यूएस आरक्षण के लाभों का दावा करने के लिए अपेक्षित आय से बहुत अधिक है की गलत बयानी के आधार पर प्रवेश प्राप्त किया था। याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल में धोखाधड़ी से सीट हासिल करने के लिए किए गए विभिन्न प्रयासों का संदेह उत्पन्न होता है और इसलिए, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के पिता की ओर से गलत काम स्पष्ट रूप से सिद्घ होते हैं। यह भी देखा गया है कि याचिकाकर्ता के पिता के खिलाफ पहले से ही एक प्राथमिकी लंबित है और इसलिए, कानून के उद्देश्यों को लागू करने के लिए ऐसे पहलुओं का पता लगाने और न्यायनिर्णयन लेने में कानून अपना काम करेगा।

60. इसके अलावा, वर्तमान मामले के तथ्य याचिकाकर्ता द्वारा दायर पहले की दो याचिकाओं की तथ्यात्मक स्थिति से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं, जिन्हें इस न्यायालय ने अनुमति दी थी। पिछले मामलों में, न तो कारण बताओ नोटिस उचित रूप से दिए गए थे और न ही याचिकाकर्ता को कोई प्रभावी सुनवाई की अनुमति दी गई थी। इसके अलावा, उक्त आईटीआर जो वर्तमान मामले में न्यायिक कार्यवाही के दौरान दायर की गई हैं, पिछली याचिकाओं में दायर नहीं की गई थी। इस प्रकार, वर्तमान स्थिति पिछली रिट याचिकाओं से अतुलनीय लगती है।

61. यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हालांकि आय, अधिवास और जन्म के प्रमाण-पत्र शुरू में सरकारी प्राधिकारियों द्वारा जारी किए गए थे, हालांकि वे याचिकाकर्ता के पिता द्वारा तथ्यों की गलत बयानी के आधार पर प्राप्त किए गए थे। पूरा मामला याचिकाकर्ता के पिता की आय के इर्द-गिर्द घूमता है और चूंकि, आय का तथ्य स्वयं गलत तथ्यात्मक आधार पर आधारित था, इसलिए अधिवास और जन्म प्रमाण पत्र के संबंध में कपटपूर्ण कार्य पर किसी भी विचार-विमर्श की आवश्यकता नहीं है। दरअसल, याचिकाकर्ता के पिता द्वारा प्रस्तुत आईटीआर से संबंधित तालिका पर एक नज़र डालने से याचिकाकर्ता के लिए प्रवेश पाने के लिए एक ठोस और पूर्व नियोजित प्रयास का संकेत मिलेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने पिछले वर्षों यानी वित्तीय वर्ष 2010-11 और 2011-12 के लिए आईटीआर दाखिल करने से बचने की योजना बनाई थी ताकि प्रवेश पाने में किसी भी बाधा से बचा जा सके। इस प्रकार, पहले मुद्दे का उत्तर इस आशय के साथ सकारात्मक है कि याचिकाकर्ता का प्रवेश दुर्भावनापूर्ण तरीके से और संस्थानों के साथ धोखाधड़ी करके प्राप्त किया गया था।

<u>मुद्दा II</u>

62. अगला मुद्दा जो विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या न्यायालय को उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस वर्तमान

याचिका में प्रार्थना की गई राहत पर निर्णय लेने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने न्यायसंगत क्षेत्राधिकार का उपयोग करना चाहिए।

63. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रयोग करने योग्य क्षेत्राधिकार की प्रकृति और दायरा विभिन्न न्यायिक घोषणाओं में चर्चा का विषय रहा है। अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार के दायरे पर विचार करने के लिए निर्णयों की एक श्रृंखला का सन्दर्भ लेना महत्वपूर्ण है।

64. ***द्वारकानाथ बनाम आयकर अधिकारी, विशेष सर्किल, कानपुर***[8] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय का निर्णय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 को शामिल करने के पीछे संवैधानिक ज्ञान को संक्षेप में बताता है, जो इस प्रकार है:

> *"4. हम पहले प्रारंभिक आपत्ति देखेंगे क्योंकि यदि हम इसे बनाए रखते हैं तो विचार के लिए कोई अन्य प्रश्न नहीं उठेगा। संविधान का अनुच्छेद 226 इस प्रकार है:*
>
> > ***"....** प्रत्येक उच्च न्यायालय को, उन राज्यक्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए और किसी अन्य प्रयोजन के लिए उन राज्यक्षेत्रों के भीतर किसी व्यक्ति या प्राधिकारी को या समुचित मामलों में किसी सरकार को ऐसे निदेश, आदेश या रिट जिनके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं या उनमें से कोई निकालने की शक्ति होगी।"*

यह अनुच्छेद व्यापक वाक्यांशविज्ञान में लिखा गया है और यह प्रथम दृष्टया उच्च न्यायालयों को जहां भी अन्याय पाया जाता है, उस तक पहुंचने की व्यापक शक्ति प्रदान करता है। संविधान ने शक्ति की प्रकृति, उद्देश्य जिसके लिए और जिस व्यक्ति या प्राधिकारी के विरुद्ध इसका प्रयोग किया जा सकता है, का वर्णन करने के लिए डिज़ाइन की गई एक विस्तृत भाषा का उपयोग किया है। यह परमाधिकार रिट की प्रकृति में रिट जारी कर सकता है जैसा कि इंग्लैंड में समझा जाता है; लेकिन उन रिटों का दायरा "प्रकृति" अभिव्यक्ति के उपयोग से भी विस्तृत हो जाता है, क्योंकि उक्त अभिव्यक्ति भारत में जारी की जा सकने वाली रिटों की तुलना इंग्लैंड में जारी की जा सकने वाली रिटों से नहीं करती है, बल्कि केवल उनसे एक सादृश्य बनाती है। इसके अलावा, उच्च न्यायालय परमाधिकार रिट के अलावा अन्य निर्देश, आदेश या रिट भी जारी कर सकते हैं। यह उच्च न्यायालयों को इस देश की विशिष्ट और जटिल आवश्यकताओं के अनुसार राहतों को ढ़ालने में सक्षम बनाता है। विशेषाधिकार रिट जारी करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति के दायरे को अंग्रेजी न्यायालयों के साथ बराबरी करने का कोई भी प्रयास वर्षों में विकसित एकात्मक रूपी सरकार वाले इंग्लैंड जैसे तुलनात्मक रूप से छोटे देश के अनावश्यक प्रक्रियात्मक प्रतिबंधों को संघीय ढांचे के तहत काम करने वाले भारत जैसे विशाल देश में प्रस्तुत करना है। ऐसा निर्माण अनुच्छेद के उद्देश्य को ही विफल कर देता है। यह कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उच्च न्यायालय इस अनुच्छेद के तहत मनमाने ढंग से कार्य कर सकते हैं। अनुच्छेद में कुछ सीमाएँ निहित हैं और अन्य को परिभाषित चैनलों के माध्यम से अनुच्छेद को निर्देशित करने के लिए विकसित किया जा सकता है। इस व्याख्या को इस न्यायालय ने बसप्पा बनाम नागप्पा [(1962) 2 एससीआर 169] और ईरानी बनाम मद्रास राज्य [(1955) 1 एससीआर 250] में स्वीकार किया है।"

65. यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि न्यायालय में आने वाले किसी भी पक्ष को निर्दोषिता से आना चाहिए और तथ्यों के किसी भी तात्विक तत्व को

छिपाने से बचना चाहिए क्योंकि यह न्यायिक कार्यवाही की पवित्रता को प्रदूषित करेगा। ***के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड***[9] के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

> *"34. संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय का अधिकार क्षेत्र और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है। उसमें उल्लिखित परमाधिकार रिटें पर्याप्त न्याय करने के लिए जारी की जाती हैं। इसलिए, यह अत्यंत आवश्यक है कि रिट न्यायालय का दरवाजा खटखटाने वाले याचिकाकर्ता को निर्दोषिता के साथ आना चाहिए, बिना कुछ छिपाए या दबाए न्यायालय के सामने सभी तथ्यों को सामने रखना चाहिए और उचित राहत की मांग करनी चाहिए। यदि प्रासंगिक और महत्वपूर्ण तथ्यों का कोई स्पष्ट प्रकटीकरण नहीं है या याचिकाकर्ता न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो उसकी याचिका को दावे के गुणागुण पर विचार किए बिना प्रारम्भ में ही खारिज किया जा सकता है।"*

66. माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***उद्यमी एवं खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्था बनाम उत्तर प्रदेश राज्य***[10] के मामले में न्यायसंगत कार्यवाही में निष्पक्षता के महत्व को निम्नानुसार दोहराया:

> *"16. एक रिट उपाचार न्यायसंगत है। उच्चतम न्यायालय में आने वाले व्यक्ति को निर्दोषिता के साथ आना चाहिए। इसे न केवल किसी भी महत्वपूर्ण तथ्य को दबाना चाहिए, बल्कि बार-बार कानूनी कार्यवाही का सहारा नहीं लेना चाहिए जो विधिक प्रक्रिया के दुरुपयोग के बराबर है। महाधिवक्ता, बिहार राज्य बनाम एमपी खैर इंडस्ट्रीज मामले में इस न्यायालय की राय थी कि रिट याचिकाओं को बार-बार दाखिल करना आपराधिक अवमानना है।"*

67. ***मन्होहर लाल बनाम उग्रसेन***[11] के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा कि यह प्रकृति का नियम है कि किसी को दूसरे के नुकसान या चोट से समृद्ध नहीं किया जाना चाहिए। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद सं. 48 इस प्रकार है:

> *"48. वर्तमान अपीलार्थीगण ने यह भी खुलासा नहीं किया था कि उन्हें आवंटित भूमि वाणिज्यिक क्षेत्र के अंतर्गत आती है। जब कोई व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए न्यायालय में जाता है तो उसे न केवल निर्दोषिता के साथ बल्कि स्पष्ट सोच, साफ दिल और अच्छे इरादे के साथ न्यायालय में जाना चाहिए। समान रूप से, न्यायिक प्रक्रिया को कभी भी उत्पीड़न या दुर्व्यवहार का साधन नहीं बनना चाहिए या न्याय को भंग करने के लिए न्यायालय की प्रक्रिया में एक साधन नहीं बनना चाहिए। जो बराबरी चाहता है उसे बराबरी अवश्य रखनी चाहिए। विधिक सूक्ति "ज्यूर नेचुरीएक्यूम इस्ट नेमिनेम कम अल्टरियस डिट्रिमेंटो एट इंजुरिया फिएरी लोकुप्लेटियोरेम" का अर्थ है कि यह प्रकृति का नियम है कि किसी को दूसरे को होने वाले नुकसान या चोट से समृद्ध नहीं होना चाहिए। (रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ [1993 अनुपूरक (2) एस.सी.सी. 20 : ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 852], के.आर. श्रीनिवास बनाम आर.एम. प्रेमचंद [(1994) 6 एस.सी.सी. 620] और नूरदुद्दीन बनाम डॉ. के.एल. आनंद [(1995) 1 एस.सी.सी. 242] एससीसी पृष्ठ 249, पैरा 9 पर के माध्यम से)"*

68. ***रमणीकलाल एन. भुट्टा बनाम महाराष्ट्र राज्य***[12] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय का विचार था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालय लोक हित और निजी हित के बीच संतुलन बनाएंगे। उक्त निर्णय का अनुच्छेद सं. 10 इस प्रकार है:

"10...अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति विवेकाधीन है। इसका प्रयोग केवल न्याय के हितों को आगे बढ़ाने के लिए किया जाएगा न कि केवल कानूनी मुद्दे को उठाने के लिए। और सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए भूमि अधिग्रहण के मामले में, न्याय के हित और लोक हित एक साथ मिल जाते हैं। वे अक्सर एक ही जैसे होते हैं। यहां तक कि एक सिविल वाद में, व्यादेश या अन्य समान आदेश देना, विशेष रूप से अंतर्वर्ती प्रकृति का, समान रूप से विवेकाधीन है। अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालयों को लोक हित बनाम निजी हित को तौलना होता है - वास्तव में उनकी कोई भी विवेकाधीन शक्तियां।"

69. माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***वी. चंद्रशेखरन बनाम प्रशासनिक अधिकारी13*** के मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार की न्यायसंगत प्रकृति पर व्यापक चर्चा करते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"44. अपीलार्थीगण ने निर्दोषिता के साथ न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया है और इसलिए वे किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं। जब भी कोई व्यक्ति अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए समता न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, तो यह अपेक्षा की जाती है कि वह न केवल निर्दोषिता के साथ बल्कि स्पष्ट सोच, साफ दिल और अच्छे इरादे के साथ उक्त न्यायालय में जाएगा। इस प्रकार, जो समता चाहता है उसे समता अवश्य रखनी चाहिए। विधिक सूक्ति ज्यूर नेचुरी एक्वम इस्ट नेमिनेम कम अल्टरियस डिट्रिमेंटो एट इंजुरिया फिएरी लोकुप्लेटियोरेम का अर्थ है कि यह प्रकृति का नियम है कि किसी को दूसरे को नुकसान या चोट पहुंचाकर समृद्ध नहीं होना चाहिए। (रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ [1993 अनुपूरक (2) एस.सी.सी.20: ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 852] नूरदुद्दीन बनाम के.एल.आनंद [(1995) 1 एस.सी.सी. 242] और रमणिकलाल एन. भुट्टा बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1997) 1 एस. सी.सी. 134: ए.आई.आर.1997 एस.सी. 1236] के माध्यम से।)

45. न्यायिक प्रक्रिया उत्पीड़न या दुरुपयोग का साधन नहीं बन सकती है या न्यायालय की प्रक्रिया में न्याय को नष्ट करने का एक साधन नहीं बन सकती है, इस कारण से कि न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग केवल न्याय को आगे बढ़ाने के लिए करता है। न्याय के हित और सार्वजनिक हित एक साथ मिलते हैं और इसलिए, वे अक्सर एक समान होते हैं। एक याचिका या एक शपथ-पत्र जिसमें एक भ्रामक और/या एक गलत बयान है, केवल एक अप्रत्यक्ष उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

46. दलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 2 एससीसी 114: (2010) 1 एससीसी (सीआईवी) 324] मामले में इस न्यायालय ने मुकदमेबाजों की एक पूरी तरह से नई पंथ, यानी बेईमान मुकदमेबाजों पर ध्यान दिया और यह देखते हुए उनके आचरण की कड़ी निंदा की कि सत्य न्याय वितरण प्रणाली का एक अभिन्न अंग है। निजी लाभ की चाहत इतनी तीव्र हो गई है कि मुकदमेबाजी में शामिल लोग न्यायालय की कार्यवाही के दौरान झूठ, गलत बयानी और तथ्यों को दबाने का सहारा लेने से नहीं हिचकिचाते। एक मुकदमेबाज जो न्याय की धारा को प्रदूषित करने का प्रयास करता है या जो अनैतिक आचरण वाला व्यक्ति होकर न्याय के सागर को छूता है, वह किसी भी राहत, अंतरिम या अंतिम का हकदार नहीं है।"

70. उपर्युक्त न्यायिक निर्णयों से विधिवत संकेत मिलता है कि अनुच्छेद 226 के तहत उपचार प्रकृति में पूर्ण है और इसका उद्देश्य विभिन्न रूपों में प्रचलित अन्याय से निपटना है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि संवैधानिक न्यायालय, विशुद्ध मौलिक अधिकारों के संरक्षक होने के नाते, अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त साधनों से लैश हैं। हालाँकि, व्यापक शक्तियों को पर्याप्त रक्षोपायों द्वारा सीमित किया जाना चाहिए और यह सही भी है। उपरोक्त न्यायिक निर्णयों से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि अनुच्छेद

226 के तहत राहत चाहने वाले मुकदमेबाज को किसी भी महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाए बिना, निर्दोषिता के साथ न्यायालय में आना चाहिए। समता केवल नेक इरादों के साथ मांगी जानी चाहिए और विधिक प्रक्रिया के किसी भी दुरुपयोग को रोकने के लिए उक्त स्थिति से विचलित होने के किसी भी प्रयास से कठोरता से निपटा जाना चाहिए। यह स्पष्ट है कि उस पक्ष को कोई राहत नहीं दी जा सकती जो न्यायसंगत शक्तियों का लाभ उठाने के लिए बुरी नियत के साथ न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है। आखिरकार, न्याय की धारा किसी भी परिस्थिति में प्रदूषित नहीं होनी चाहिए।

71. यद्यपि न्यायालय के प्रति निष्पक्ष होने की आवश्यकता सभी न्यायिक मंचों पर समान रूप से आवश्यक है लेकिन संवैधानिक न्यायालयों के समक्ष इसका अधिक महत्व है। क्योंकि, रिट क्षेत्राधिकार में, उच्च न्यायालय को पक्षकारगण की मौखिक रूप से जांच या प्रतिपरीक्षा करने का लाभ नहीं होता है और अधिकतर, शपथ-पत्रों पर निर्भरता होती है। ऐसे परिदृश्य में, निर्दोषिता के साथ न्यायालय का रुख करने का महत्व सर्वोपरि हो जाता है और उक्त आवश्यकता को दरकिनार करने का कोई भी प्रयास संवैधानिक उपचारों के साथ धोखाधड़ी माना जाएगा।

72. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के पिता ने न्यायालय में कार्यवाही के दौरान ही स्वीकार किया है कि उनकी आय संबंधित वर्ष के लिए आवश्यक सीमा से बहुत अधिक है। अन्यथा भी, उसे प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल में ईडब्ल्यूएस

श्रेणी में याचिकाकर्ता के अध्ययन की अवधि के दौरान उक्त सीमा को बनाए रखना आवश्यक था। चूँकि बाद के वर्षों के लिए उनकी आय भी अपेक्षित आय से बहुत अधिक है इसलिए उन्हें तुरंत याचिकाकर्ता की श्रेणी को बदलने के लिए एक आवेदन देना चाहिए था या कोई अन्य उचित सहारा लेना चाहिए था जिससे याचिकाकर्ता या उसके पिता की सद्भावना सिद्ध हो सके। बल्कि, याचिकाकर्ता ने बाद के वर्षों तक लगातार पढ़ाई जारी रखी, जिससे एक पात्र बच्चा वंचित हो गया जो याचिकाकर्ता के बदले प्रवेश प्राप्त कर सकता था।

73. दिलचस्प बात यह है कि सक्षम प्राधिकारियों द्वारा आय और अधिवास प्रमाण-पत्र के रद्दकरण को याचिकाकर्ता द्वारा आज तक चुनौती नहीं दी गई है। याचिकाकर्ता का एकमात्र प्रयास न्याय की पर्याप्त विफलता की तकनीकी जटिलताओं को बढ़ाकर वर्तमान मामले को चुनौती देना रहा है। लेकिन, अब और नहीं।

74. इसलिए, यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता ने अनैतिक आचरण वाला व्यक्ति होकर इस न्यायालय के न्यायसंगत क्षेत्राधिकार का सहारा लेने की कोशिश की है और इसलिए याचिका केवल इस बिंदु पर सीधे तौर पर खारिज की जा सकती है। हालांकि, यह ध्यान में रखते हुए कि यह याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए मुकदमेबाजी का तीसरा दौर है, यह न्यायालय अपने विवेक को संतुष्ट करने और न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इस मामले के गुणागुण पर गहन विचार करना उचित समझता है।

<u>मुद्दा III</u>

75. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, समय बीतने और कानून की गतिशीलता के साथ दो प्राथमिक परीक्षणों को पूरा करने के लिए संक्षेप में परिवर्तित हो गए हैं -निमो इन प्रोप्रिया कॉसा ज्यूडेक्स, एस्से डिबेट और ऑडी अल्टरम पार्टेम यानी, क्रमश: पक्षपात के खिलाफ नियम और निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार|"

76. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उद्देश्य कानून की नजर में समान अवसर के वचन को जीवंत बनाना है और इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यह प्रस्तावना सहित भारत के संविधान में मौन रूप से निहित कहा जा सकता है। हालांकि, इन सिद्धांतों का व्यावहारिक अनुप्रयोग अविचारित या पूर्ण तरीके से नहीं किया जाता है। वास्तव में, प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को एक बेलगाम घोड़ा कहा जाता था संभवतः उसी के अविचारित अनुप्रयोग से जुड़े खतरों को इंगित करने के लिए। हालांकि, ***एंडरबी टाउन फुटबॉल क्लब लिमिटेड बनाम फुटबॉल एसोसिएशन लिमिटेड 14*** के मामले में, लॉर्ड डेनिंग ने देखा कि अगर काठी पर एक अच्छा आदमी बैठा हो तो बेलगाम घोड़े को काबू में रखा जा सकता है; यह बाधाओं को पार कर सकता है, यह कल्पनाओं द्वारा लगाई गई बाड़ को फांद सकता है और न्याय के दूसरी तरफ आ सकता है। ***जैन एक्सपोर्ट्स (प्रा) लिमिटेड बनाम भारत संघ***[15] में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्राकृतिक न्याय के पालन की बाजी के मोल के साथ कोई प्रासंगिकता नहीं है लेकिन अनिवार्य रूप से किसी मौजूदा स्थिति की मांग

संबंधित है। इसलिए, सिद्धांत विभिन्न तथ्यात्मक परिदृश्यों में अलग-अलग आकार और सार धारण करते हैं।

77. इस बिंदु पर सबसे शुरुआती निर्णयों में से एक निर्णय टकर, एलजे द्वारा ***रसेल बनाम ड्यूक ऑफ नॉरफ़ॉक 16*** में दिया गया था, जिसमें यह इस प्रकार देखा गया था:

> *"मेरे विचार से, ऐसे कोई शब्द नहीं हैं जो हर तरह की जांच और हर तरह के घरेलू अधिकरण के लिए सार्वभौमिक अनुप्रयोग के लिएहों। प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताएं मामले की परिस्थितियों, जांच की प्रकृति, उन नियमों पर निर्भर होनी चाहिए जिनके तहत अधिकरण कार्य कर रहा है जिस विषय-वस्तु पर विचार किया जा रहा है और इत्यादि। तदनुसार, मुझे समय-समय पर इस्तेमाल की जाने वाली नैसर्गिक न्याय की परिभाषाओं से ज्यादा सहायता नहीं मिलती है, लेकिन, जो भी मानक अपनाया जाता है, एक आवश्यक बात यह है कि संबंधित व्यक्ति को अपना मामला प्रस्तुत करने का उचित अवसर मिलना चाहिए।"*

78. उपरोक्त निर्णय को भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ***सुरेश कोशी जॉर्ज बनाम केरल विश्वविद्यालय***[17] में अनुमोदन के साथ अपनाया गया था जिसमें यह माना गया था कि "प्राकृतिक न्याय के नियम सन्निहित नियम नहीं हैं" और बाद में ***केरल राज्य बनाम केटी शादुली किराना डीलर***[18] जिसमें यह माना गया था कि "प्राकृतिक न्याय के नियम स्थिर नहीं हैं: वे सार्वभौमिक अनुप्रयोग वाले पूर्ण और कठोर नियम नहीं हैं। इसी सिद्धांत की बाद की पुनरावृत्ति का पता ***कर्नाटक एसआरटीसी बनाम एसजी कोट्टुरप्पा***[19] में लगाया

जा सकता है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कानून की स्थिति इस प्रकार निर्धारित की:

> *"24. ..... यह प्रश्न कि किस हद तक, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करना आवश्यक है, प्रत्येक मामले में प्राप्त तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करेगा। नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को शून्य में लागू नहीं किया जा सकता है। इन्हें किसी भी निश्चित सूत्र में नहीं रखा जा सकता है। इसके अलावा, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन तब आवश्यक नहीं है जब यह एक खोखली औपचारिकता की ओर ले जाएगा..."*

79. प्राकृतिक न्याय की अवधारणा पर न्यायिक टिप्पणियों का दृष्टिकोण यह ही रहा है कि इस अवधारणा से जुड़े सिद्धांत विश्वव्यापी उपयोग के लिए नहीं हैं। प्राकृतिक न्याय के मानकों का पता लगाने की प्रक्रिया में न्यायालय को प्रत्येक मामले में निर्णय की प्रकृति (विधायी, अर्ध-न्यायिक, न्यायिक आदि), पक्षों के बीच संबंध, अधिनियमित नियम (यदि कोई हो) आदि के प्रति सचेत रहना चाहिए। अंतिम कसौटी निर्णय लेने में तर्कसंगतता, निष्पक्षता और गैर-मनमानापन होती है। ***मेनका गांधी बनाम भारत संघ*** मामले में कानून के शासन के ऊपर माननीय उच्चतम न्यायालय की राय कि यह प्रक्रिया उचित, निष्पक्ष और तर्कसंगत होनी चाहिए, न कि काल्पनिक, दमनकारी या मनमानी, फिर भी सटीक है।

80. वर्तमान मामले में, चूंकि ऑडी अल्टरम पार्टेम (दूसरे पक्ष को भी सुनना) के सिद्धांत का पालन प्रश्न में है, याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों को उक्त सिद्धांत को नियंत्रित करने वाले कानून के शासन की कसौटी पर जांचा जाना

है। यह स्थापित न्यायशास्त्र है कि नोटिस जारी करना प्राकृतिक न्याय की प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण कदम है। ***गोरखा सुरक्षा सेवा बनाम सरकार (रा.रा.क्षे. दिल्ली)*** मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षा को पूरा करने के लिए पर्याप्त नोटिस की अनिवार्यता निर्धारित की। उक्त निर्णय का अनुच्छेद संख्या 22 निम्नानुसार है:

> *"22. उच्च न्यायालय ने बस इतना कहा है कि कारण बताओ नोटिस का उद्देश्य मुख्य रूप से नोटिस प्राप्तकर्ता को उन आधारों का मुकाबला करने में सक्षम बनाना है जिन पर उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय इस हद तक उचित है। हालांकि, यह उल्लेख करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि यदि नोटिस प्राप्तकर्ता उन आधारों का संतोषजनक रूप से मुकाबला नहीं करता जिन पर कार्रवाई की जानी है, तो क्या परिणाम होंगे।* ***इसे अलग शब्दों में कहते हुए, हमारी राय है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए, कारण बताओ नोटिस द्वारा निम्नलिखित दो आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए:***
>
> ***(i) वह सामग्री/आधार जो विभाग के अनुसार कार्रवाई की मांग करता है;***
>
> ***(ii) वह दंड/कार्रवाई जो की जानी है। यह दूसरी आवश्यकता है जो उच्च न्यायालय से छूट गई है।***
>
> ***हम भी कह सकते हैं कि भले ही कारण बताओ नोटिस में इसका विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया हो, लेकिन इसे पढ़ने से स्पष्ट और निश्चित रूप से जाना जा सकता है, यह इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त होगा।***
>
> *[ज़ोर दिया गया]*

79. कानून की उपरोक्त स्थिति के आलोक में, पहले याचिकाकर्ता को जारी किए गए कारण बताओ नोटिस की वैधता का पता लगाना उचित होगा। यहां

तथ्यात्मक परिदृश्य इंगित करता है कि दिनांक 24.01.2019 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था जिसमें याचिकाकर्ता के पिता को यह बताने के लिए कहा गया था कि याचिकाकर्ता का प्रवेश रद्द क्यों नहीं किया जाना चाहिए। दिनांक 24.01.2019 का कारण बताओ नोटिस निम्नानुसार है:

<u>"कारण बताओ नोटिस</u>

जबकि, श्री गौरव गोयल ने नर्सरी कक्षा में शैक्षणिक वर्ष 2013-14 में आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग ("ईडब्ल्यूएस") श्रेणी में संस्कृति स्कूल, चाणक्यपुरी में मास्टर सिंघम नामक अपने वार्ड के लिए दाखिला प्राप्त किया था।

जबकि, श्री गोयल ने आवेदन के साथ कुछ और दस्तावेज़ दायर किये थे जिनमें मास्टर सिंघम से संबंधित दिनांक 05.01.2013 के जन्म प्रमाण पत्र पंजीकरण संख्या एमसीडीओएलआईआर-0113-005476247, दिनांक 08/01/2013 का एक आय प्रमाण पत्र संख्या इनकम/7/73/2418/12/12/2012/9321012860/108 जिसमें सभी स्रोतों से कुल 67200/- रुपये की आय दर्शाई गई है, दिनांक 18.12.2012 का एक अधिवास प्रमाण पत्र जिसमें उनका आवासीय पता ए/154, ब्लॉक एस-117, संजय कैंप, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली आदि दर्शाया गया है, शामिल हैं।

जबकि, दिनांक 03.01.2018 को, श्री गौरव गोयल ने प्रधानाचार्य, संस्कृति स्कूल को एक अनुरोध किया जिसमें मास्टर सिंघम की प्रवेश की श्रेणी को ईडब्ल्यूएस/डीजी से सामान्य में परिवर्तित करने का अनुरोध किया गया।

जबकि, श्री गोयल द्वारा किए गए पूर्वोक्त अनुरोध की प्रक्रिया और जांच के दौरान, श्री गोयल द्वारा स्थापित दावे की सत्यता और वास्तविकता के संबंध में कुछ संदेह उत्पन्न हुए हैं कि वह और उनका परिवार 2013-14 की अवधि के दौरान ईडब्ल्यूएस श्रेणी से संबंध रखते थे, जो संस्कृति स्कूल में मास्टर सिंघम को प्रवेश देने का आधार बना। ऐसा प्रतीत होता है कि

1. श्री गौरव गोयल की वार्षिक आय वर्ष 2012-13 के दौरान और बाद के निर्धारण वर्षों के दौरान भी 1 लाख रुपये से अधिक थी।

II. जन्म प्रमाण पत्र सं. एमसीडीओएलआईआर- 0113-005476247 एक वास्तविक दस्तावेज नहीं है।

III. श्री गोयल का प्रासंगिक समय में ऐ/154, ब्लॉक एस-117, संजय कैंप, चाणक्यपुरी, नई दिल्ली का निवासी होने का दावा झूठा है।

जबकि, समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए कम से कम 25% सीटों का आरक्षित कोटा प्रदान करने का औचित्य और उद्देश्य, जैसा कि बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 12 (1)(ग) में निहित है, यह सुनिश्चित करना है कि समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों या परिभाषित नुकसान से पीड़ित बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाए।

जबकि, प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृति विद्यालय में मास्टर सिंघम का प्रवेश महत्वपूर्ण भौतिक तथ्यों और दस्तावेजों के दमन, मनगढ़ंत और जालसाजी से दागदार था। यह भी प्रतीत होता है कि श्री गोयल द्वारा की गई गंभीर धोखाधड़ी के परिणामस्वरूप एक योग्य वास्तविक उम्मीदवार के ईडब्ल्यूएस श्रेणी के तहत प्रवेश को दुर्भाग्यपूर्ण और अन्यायपूर्ण रूप से रद्द किया गया है। जबकि, यदि यह स्थिति है, तो संस्कृति स्कूल में मास्टर सिंघम को दिया गया प्रवेश रद्द किया जा सकता है।

अब, इसलिए, दिल्ली स्कूल शिक्षा अधिनियम, 1973 की धारा 3, दिल्ली बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार नियम, 2011 के नियम 26 के तहत निहित शक्ति के प्रयोग में, अधिसूचना संख्या 15 (172)/डीई/अधिनियम/2010/69 दिनांक 07.01.2011 के खंड 10 के साथ पठित और दिनांक 07.01.2019 के माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रि.या. (सि) सं. 8791/2018 में पारित निर्णय, इस मामले में आगे बढ़ने से पहले, मास्टर सिंघम के पिता श्री गौरव गोयल को दिनांक 04.02.2019 को दोपहर 2:00 बजे शिक्षा निदेशक के कक्ष में कमरा नंबर 12, शिक्षा

निदेशालय, ओल्ड सेक्रेटेरिया, दिल्ली-110054 में व्यक्तिगत सुनवाई के लिए बुलाना ठीक समझा जाता है ताकि वह संतोषजनक रूप से यह स्पष्टीकरण दे सकें कि संस्कृति स्कूल चाणक्यपुरी, नई दिल्ली में मास्टर सिंघम का दाखिला रद्द क्यों न किया जाए।

यह सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन से जारी किया जाता है।"

80. यदि पूर्वोक्त नोटिस का अवलोकन किया जाए तो यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द करने की कार्रवाई *अन्य बातों के साथ-साथ* कई आधारों के कारण आवश्यक थी जैसे कि याचिकाकर्ता के पिता द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल में याचिकाकर्ता का प्रवेश करवाने के लिए प्रासंगिक समय पर भ्रामक दस्तावेज प्रस्तुत करने के कारण। उक्त नोटिस में स्पष्ट रूप से उन आधारों को निर्धारित किया गया है जिनके लिए कार्रवाई के साथ-साथ प्रस्तावित दंड यानी याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द करने की आवश्यकता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि उक्त कारण बताओ नोटिस मामले को समाप्त नहीं करता है बल्कि, इसमें ***गौरखा सुरक्षा (पूर्वोक्त)*** मामले में परिकल्पित पर्याप्त नोटिस के निर्धारण के लिए तैयार किए गए दो-आयामी दृष्टिकोण को पूरा करने के लिए स्पष्ट रूप से अपेक्षित जानकारी शामिल है।

81. निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता को उक्त नोटिस का जवाब देने के लिए पर्याप्त समय दिया गया था। उक्त नोटिस के मद्देनजर दिनांक 04.02.2019 को प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा बैठक के रूप में एक व्यक्तिगत सुनवाई भी निर्धारित की गई थी। सुनवाई के समय, याचिकाकर्ता के पिता ने जवाब दाखिल

करने के लिए दो सप्ताह का समय मांगा, जिसे प्रत्यर्थी संख्या 1-डीओई ने मंजूर कर लिया।

82. यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई व्यक्ति अनसुना न रह जाए, अगला महत्वपूर्ण कदम कार्यवाही के दौरान उसके विरुद्ध उपयोग किये गये सबूत के बारे में जानने का अधिकार माना जा सकता है। यह न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले प्रशासनिक प्राधिकरण अर्थात प्रत्यर्थी संख्या 1-डीओई के साथ मिलकर कार्यवाही के दौरान व्यक्ति के विरुद्ध उपयोग किए गए सबूतों का यथोचित खुलासा करता है। निष्पक्ष सुनवाई के इस सिद्धांत की विधिवत अवधारणा माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा ***ढाकेश्वरी कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर आयुक्त, पश्चिम बंगाल*** और अन्य के मामले में की गई है, जिसमें, पैराग्राफ संख्या 9 के रूप में यह बोला गया था:

> ***"9. इस मामले में हमारी राय है कि अधिकरण ने अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में न्याय के कुछ मूलभूत नियमों का उल्लंघन किया। सबसे पहले, इसने निर्धारिती को यह नहीं बताया कि विभागीय प्रतिनिधि द्वारा उसे क्या जानकारी दी गई थी। इसके बाद, इसने कंपनी को उसके द्वारा प्रस्तुत सामग्री का खंडन करने का कोई अवसर नहीं दिया, और अंत में, इसने उन सभी सामग्रियों को लेने से इनकार कर दिया जो निर्धारिती अपने मामले के समर्थन में पेश करना चाहता था। नतीजा यह हुआ कि निर्धारिती की निष्पक्ष सुनवाई नहीं हुई।*** *आयकर अधिकारी और अधिकरण दोनों के द्वारा विक्रय पर लाभ की सकल दर का अनुमान, संदेह और राय पर आधारित प्रतीत होता है। यह कुछ हद तक आश्चर्यजनक है कि अधिकरण ने विभाग के प्रतिनिधि से अन्य कपास मिलों की सकल लाभ दरों का एक ब्यौरा निर्धारिती को बिना उसे दिखाए लिया जहां उसे यह दर्शाने का भी अवसर*

नहीं मिला कि क्या उस ब्यौरे की प्रश्नगत मिल के मामले में कोई प्रासंगिकता थी भी या नहीं। यह ज्ञात नहीं है कि जिन मिलों ने इन दरों का खुलासा किया था, वे बंगाल में स्थित थीं या कहीं और, और क्या ये मिलें समान रूप से स्थित और परिस्थितिजन्य थीं। अधिकरण ने न केवल विभाग के प्रतिनिधि द्वारा अपीलकर्ता को दी गई जानकारी नहीं दिखाई, बल्कि उसने उन पुस्तकों और कागजों के ट्रंक लोड को देखने से भी इनकार कर दिया, जिन्हें श्री बनर्जी ने अपने कक्ष में लेखाकार सदस्य के सामने पेश किया था। अगर विभाग को नोटिस देने के बाद ट्रंक खोला गया होता तो कोई नुकसान नहीं होता और कुछ समय यह देखने के लिए समर्पित किया जाता कि इसमें क्या है। इस मामले में और संबंधित अपील में, हमें बताया गया है, 55 लाख रुपये के आंकड़े से ऊपर था और इस परिमाण के मामले से निपटने के दौरान यह उचित था कि अनावश्यक जल्दबाजी न करें और अधीरता दिखाएं, खासकर जब विभाग को यह पता था कि निर्धारिती की किताबें उप-विभागीय अधिकारी, नारायणगंज की हिरासत में थीं। हमें लगता है कि विक्रय पर सकल लाभ दर का अनुमान लगाने में आयकर अधिकारी और अधिकरण दोनों ने किसी भी सामग्री पर कार्रवाई नहीं की, बल्कि शुद्ध अनुमान और संदेह पर काम किया। इस प्रकार यह अनुच्छेद 136 के तहत हमारी शक्ति के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला है।

[जोर दिया गया]

83. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सुनवाई की अगली तारीख अर्थात् दिनांक 26.02.2019 को याचिकाकर्ता के पिता ने जवाब दायर किया और कारण बताओ नोटिस से संबंधित प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा आधार बनाए गए सभी दस्तावेज मांगे। सुनवाई के दौरान, उससे दस्तावेजों की एक स्पष्ट सूची प्रदान करने की भी मांग की गई थी ताकि उन पर विचार किया जा सके और दस्तावेजों की सूची देने के लिए याचिकाकर्ता के पिता को 3 दिन का समय

दिया गया। साथ ही, अतिरिक्त उत्तर, यदि कोई हो, दाखिल करने के लिए अतिरिक्त 12 दिनों का समय दिया गया।

84. इसके बाद दिनांक 02.03.2019 को याचिकाकर्ता के पिता ने सक्षम प्राधिकारी के सभी सहायक दस्तावेजों और रिपोर्टों के साथ किए गए पूर्ण सत्यापन का विवरण प्रदान करने का अनुरोध किया। इस संबंध में दस्तावेजों की एक सूची भी संलग्न की गई थी। उसके जवाब में, प्रत्यर्थी सं. 1 डीओई ने दिनांक 11.03.2019 के पत्र के माध्यम से उक्त दस्तावेज प्रदान किए, जैसा कि उनके द्वारा अनुरोध किया गया था। इसलिए, यह साफ़ तौर से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के हितों को खतरे में डाले बिना, प्रत्यर्थी सं. 1-डीओई द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था उन्हें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए याचिकाकर्ता के पिता को विधिवत प्रदान किया गया था।

85. निष्पक्ष-प्रकटीकरण की आवश्यकता हमारी संवैधानिक योजना में गहराई से समाहित है। इस तरह के प्रकटीकरण का अंतर्निहित उद्देश्य कार्यवाही के विषय को उसके खिलाफ सबूतों का सार्थक जवाब देने में सक्षम बनाना है। ऐसे में यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को किसी भी तरह से सामग्री से वंचित नहीं किया गया।

86. अब, दूसरे पक्ष को भी सुनने की अधिरचना के तीसरे मूलभूत अंग का सन्दर्भ देना उचित है, जिसके लिए आवश्यक है कि न्यायनिर्णायक प्राधिकारी को सामान्य प्रक्रिया में न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के विवेक पर, पीड़ित पक्ष को

अपना मामला लिखित या मौखिक रूप से प्रस्तुत करने का उचित अवसर देना चाहिए। इस बिंदु पर कानून की स्थापित स्थिति स्पष्ट है कि मौखिक सुनवाई निष्पक्ष सुनवाई का अभिन्न अंग नहीं है जब तक कि मामले की दी गई परिस्थितियों में न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इसे आयोजित करना आवश्यक न हो, जहां कोई व्यक्ति प्रभावी बचाव करने में असमर्थ हो।

87. ***भारत संघ बनाम ज्योति प्रकाश मित्तर***[23] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की एक संविधान पीठ ने यह विचार किया कि जब किसी व्यक्ति को अपना मामला लिखित रूप में प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया गया है, तो मौखिक सुनवाई नहीं किए जाने पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई उल्लंघन नहीं होता है। उक्त निर्णय का अनुच्छेद सं. 26 इस प्रकार है:

> *"26. अनुच्छेद 217(3) न्यायिक प्रकृति की कार्यवाही में व्यक्तिगत सुनवाई के अधिकार की गारंटी नहीं देता है। प्राकृतिक न्याय के बुनियादी नियमों का पालन किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थी को इस कारण से प्रतिनिधित्व करने का अधिकार था। लेकिन यह आवश्यक रूप से प्राकृतिक न्याय के नियमों की एक घटना नहीं है कि आदेश से प्रभावित होने की संभावना वाले पक्ष को व्यक्तिगत सुनवाई दी जानी चाहिए। **न्यायालयों में कार्यवाही को छोड़कर, मौखिक प्रतिनिधित्व अभ्यावेदन करने के अवसर से केवल इनकार करने से कार्यवाही भ्रष्ट नहीं होगी। एक पक्ष जो किसी निर्णय से प्रभावित होने की संभावना रखता है उसे अपने खिलाफ साक्ष्य के बारे में जानने और प्रतिनिधित्व करने का अवसर पाने का अधिकार है। हालाँकि, वह यह दावा नहीं कर सकता कि उसे व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिए बिना दिया गया आदेश अमान्य है।** राष्ट्रपति एक न्यायिक कार्य कर रहे होते हैं जब वह न्यायाधीश की आयु के बारे में विवाद का निर्धारण करते हैं, लेकिन वह*

संविधान या न्यायालय द्वारा गठित नहीं होता है। किसी मामले में राष्ट्रपति को व्यक्तिगत सुनवाई करनी चाहिए या नहीं, यह उन्हें ही तय करना है। यह सवाल राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है कि वह यह तय करें कि संबंधित न्यायाधीश को मौखिक सुनवाई दी जानी चाहिए या नहीं। अभिलेख इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है कि राष्ट्रपति ने मौखिक सुनवाई करना आवश्यक नहीं समझा। राष्ट्रपति द्वारा तय किए जाने वाले कोई जटिल प्रश्न नहीं थे। एक ओर मैट्रीक्युलेशन प्रमाणपत्र है और यूनाइटेड किंगडम में आयुक्त मंडल के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा किए गए अभ्यावेदन का प्रमाण था जब प्रत्यर्थी ने भारतीय सिविल सेवा परीक्षा में प्रवेश के लिए खुद को प्रस्तुत किया था। दूसरी ओर प्रत्यर्थी द्वारा किए गए दावे का सबूत था कि उनका जन्म 27 दिसंबर, 1904 को हुआ था, जिसे पंचांग द्वारा मार्जिन में एक प्रविष्टि के साथ समर्थित करने की मांग की गई थी, एक कुंडली, पंचकारी बनर्जी, तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश सर आर्थर ट्रेवर हैरिस के सचिव, का एक शपथ पत्र, जिसमें कहा गया था कि प्रत्यर्थी की उम्र के बारे में प्रश्न पर मुख्य न्यायाधीश के साथ चर्चा की गई थी। प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए बयानों की सच्चाई को उसके आचरण के आलोक में न्याय किया जाना था कि उसने अपनी जन्म तिथि का कोई सबूत नहीं दिया था जब उसे उच्च न्यायालय का स्थायी न्यायाधीश नियुक्त किया गया था और न ही जब 1960 में उसे अपनी उम्र के बारे में अपने तर्क के समर्थन में कोई सामग्री प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था। यदि इस साक्ष्य पर राष्ट्रपति का विचार था कि विवादित प्रश्न का निर्णय व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिए बिना किया जा सकता है तो यह न्यायालय इस आधार पर आदेश को अपास्त नहीं कर सकता कि आदेश प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किए बिना किया गया था।"

[जोर दिया गया]

88. यद्यपि, वर्तमान मामले के तथ्यों से पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पिता को मौखिक और लिखित दोनों तरह से सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया था। सुनवाई की अगली तारीख जो दिनांक 25.03.2019 पर निर्धारित की

गई थी उसे अपने सभी निष्कर्ष निकालने के लिए कहा गया था। उन्हें एक सप्ताह की अवधि के भीतर अपने सभी प्रस्तुतियों को समाप्त करने के लिए कहा गया था| इसके बाद, उनके द्वारा दिनांक 25.03.2019 को एक अंतरिम जवाब दायर किया गया जिसमें कहा गया था कि सबसे पहले, कारण बताओ नोटिस अपराध के निर्धारण की प्रकृति का था, *दूसरा,* वर्तमान कार्यवाही विधि की नजर में अवैध और *गैर-कानूनी* थी क्योंकि प्रत्यर्थी सं.1- डी.ओ.ई., के निर्देशक का कार्यालय, जो मामले की सुनवाई कर रहा था, के पास अधिकार क्षेत्र का अभाव था और अंत में, तथ्यों के विवादित प्रश्न शामिल थे जिनके लिए विचारण की आवश्यकता थी।

89. इसलिए, याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया की याचिकाकर्ता के पिता को एक प्रभावी सुनवाई प्रदान नहीं की गई थी, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई आधार नहीं रखती है। इसके विपरीत, यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को नियंत्रित करने वाले कानून के अक्षरथ: के अनुरूप उन्हें न्यायिक प्रशासनिक प्राधिकरण के समक्ष अपने मामले को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने का एक अपेक्षित अवसर प्रदान किया गया था। सुनवाई का परिणाम याचिकाकर्ता के लिए वांछनीय नहीं हो सकता है हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि उसे अपना मामला पेश करने से रोका गया था।

90. *अनुलग्नक-पी22* और *अनुलग्नक-पी24* से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पिता ने भी बैठक के कार्यवृत्त पर प्रति-हस्ताक्षर किए और उसके बाद, प्रत्यर्थी सं.1-डी.ओ.ई. ने प्रस्तुतियों पर विधिवत विचार करने के बाद, दिनांक 09.02.2021 पर एक विस्तृत आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता का प्रवेश रद्ध कर दिया गया। यह आदेश प्रत्यर्थी सं.2- स्कूल द्वारा दिनांक 15.02.2021 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को उचित रूप से सूचित किया गया था। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि आक्षेपित आदेश में प्रत्यर्थी सं.1-डी.ओ.ई. द्वारा प्रदान की गई गैर-प्रभावी सुनवाई के आधार पर याचिकाकर्ता को कोई वास्तविक पूर्वाग्रह पैदा हुआ है। वास्तव में, उक्त आक्षेपित आदेश किसी भी कानूनी दुर्बलता से ग्रस्त प्रतीत नहीं होता है क्योंकि इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और उसमे शामिल कानूनी न्यायशास्त्र के सहायक तथ्यों पर पूरी ताकत और कठोरता के साथ विचार करने के बाद पारित किया गया था।

91. प्राकृतिक न्याय के अगले पहलू पर आगे बढ़ने से पहले यह ध्यान देना उचित है कि प्राकृतिक न्याय के आधार पर प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा में न्यायालय अनिवार्य रूप से निर्णय पर पहुंचने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया की समीक्षा करती हैं न कि स्वयं के निर्णय की। याचिकाकर्ता ने भले ही प्रवेश रद्ध करने के परिणाम को वांछनीय नहीं पाया हो लेकिन न्यायालय इसे अवांछनीयता के एकमात्र आधार पर असंवैधानिक नहीं ठहरा सकती है, जब तक

कि परिणाम एक निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया का परिणाम था जिसने याचिकाकर्ता को प्रक्रिया में भाग लेने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया था। यह ध्यान दिया जा सकता है कि एक सहभागी संवैधानिक लोकतंत्र में, यह वास्तव में आवश्यक है कि निर्णय किसी भी व्यक्ति के अनुपस्थिति में पारित नहीं किए जाएं। दुसरे शब्दों में कहें तो जो व्यक्ति किसी निर्णय से प्रभावित होता है उसे निर्णय की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिए। यह अवधारणा प्रक्रियात्मक सम्यक प्रक्रिया की वृहत अवधारणा से उभरती है और इसे हमारे लोकतंत्र में विधिवत मान्यता प्राप्त है।

92. चौथा और अंतिम महत्वपूर्ण भाग जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष परिणाम है वह प्रति-परीक्षा का अवसर है जो सत्य को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ***जम्मू-कश्मीर राज्य बनाम बख्शी गुलाम मोहम्मद***[24]***,*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय में निष्पक्ष सुनवाई का एक कारक माना गया था जिसमें गवाहों से प्रति-परीक्षा करने के अवसर से इनकार को चुनौती दी गई थी। हालांकि, इस आधार पर इसकी अनुमति नहीं दी गई कि गवाहों का साक्ष्य शपथ-पत्र के रूप में था और प्रतियां पक्षकारों को उपलब्ध कराई गई थीं।

93. ***के.एल. त्रिपाठी बनाम भारतीय स्टेट बैंक***[25]के मामले में, जिस पर ***सुधीर कुमार (पूर्वोक्त),*** के मामले में भरोसा किया गया है उसमें माननीय उच्चतम की राय थी कि यदि पक्ष के प्रति कोई वास्तविक पूर्वाग्रह नहीं पैदा होता है तो

प्रति-परीक्षा के किसी भी औपचारिक अवसर की अनुपस्थिति में अपने आप में निष्पक्ष रूप से लिए गए निर्णय को भ्रष्ट नहीं करेगा। ***के.एल. त्रिपाठी (पूर्वोक्त)*** का प्रासंगिक अनुच्छेद सं. 32 इस प्रकार है:-

> *"32. मूल अवधारणा प्रशासनिक, न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्रवाई में निष्पक्षता का है। कार्रवाई में निष्पक्षता की अवधारणा पक्षों के बीच विशेष आधार पर निर्भर होनी चाहिए, यदि पक्षकारों के बीच कोई हो। यदि किसी ऐसे व्यक्ति की विश्वसनीयता जिसने गवाही दी है और कुछ जानकारी दी है, संदेह में है, या, यदि गवाही देने वाले व्यक्ति का संस्करण या बयान विवाद में है, तो प्रति-परीक्षा का अधिकार अनिवार्य रूप से कार्रवाई में निष्पक्षता का हिस्सा होना चाहिए, लेकिन जहां तथ्यों के बारे में कोई जानकारी नहीं है, लेकिन परिस्थितियों की कुछ व्याख्या है, तो कार्रवाई में निष्पक्षता को सही ठहराने के लिए प्रति-परीक्षा की आवश्यकता नहीं है। जब तथ्यों के सवाल पर कोई विवाद नहीं था, तो किसी आदेश से व्यथित पक्षकार के लिए कोई वास्तविक पूर्वाग्रह पैदा नहीं हुआ है, प्रतिपरीक्षा के किसी भी औपचारिक अवसर की अनुपस्थिति में निष्पक्ष रूप से लिए गए निर्णय को अमान्य या दूषित नहीं करता है। यह तब और अधिक होता है जब जिस पक्ष के खिलाफ आदेश पारित किया गया है, वह तथ्यों पर विवाद नहीं करता है और बयान की सत्यता या विश्वसनीयता का परीक्षण करने की मांग नहीं करता है।"*

94. न्यायालय, सामान्य रूप से, प्रशासनिक न्यायनिर्णयन में प्रति-परीक्षा पर तब तक जोर नहीं देते जब तक कि परिस्थितियों में एक प्रभावी बचाव करने के लिए इसकी आवश्यकता न हो। जहाँ तक याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए यह तर्क का संबंध है कि उसे अपने खिलाफ गवाही देने वाले किसी भी 10 व्यक्तियों से प्रति-परीक्षा करने का अवसर प्रदान किया गया होगा, यह बहुत स्पष्ट है कि न्यायनिर्णायक प्राधिकरण यानी प्रत्यर्थी सं.1-डी.ओ.ई. ने एस.डी.

एम. द्वारा पारित आदेश पर भरोसा किया है जो अंततः उक्त व्यक्तियों के बयानों पर निर्भर है। इसलिए, तथ्यों के दिए गए समूह में एक अधिक प्रशंसनीय दृष्टिकोण यह होगा कि यदि उक्त बयान को कोई चुनौती दी जाती है, तो उसे उपयुक्त प्राधिकारी यानी वर्तमान मामले में एस.डी.एम. के आदेश के खिलाफ उठाया जाना चाहिए, न की प्रत्यर्थी सं.1-डी.ओ.ई.|

95. अन्यथा भी, प्रति-परीक्षा की उक्त मांग अधिवास प्रमाण-पत्र की निरस्तता के संबंध में है जो आय प्रमाण-पत्र के विपरीत विवाद का पर्याप्त आधार नहीं है जो वर्तमान याचिका के परिणाम को भौतिक रूप से प्रभावित कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, यह देखना सुरक्षित होगा कि ऐसा अवसर व्यर्थ होगा क्योंकि इसका प्रवेश रद्द करने के अंतिम निर्णय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

96. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक न्याय से संबंधित तर्क का दूसरा चरण इस तथ्य पर जोर देना चाहता है कि आक्षेपित आदेश कानून के अनुसार वहनीय नहीं है क्योंकि यह एक ऐसे अधिकारी द्वारा पारित किया गया है जो उस समय अनुपस्थित था जब सुनवाई हुई थी। यह उनका मामला है कि मामले पर निर्णय लेने के लिए एक सक्षम प्राधिकारी की अनुपस्थिति में, आक्षेपित आदेश की कोई प्रासंगिकता नहीं होनी चाहिए।

97. हालाँकि, ***कलिंग माइनिंग कारपोरेशन बनाम भारत संघ***[26], के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ-साथ प्रशासनिक कार्यों की न्यायिक समीक्षा के दायरे पर विचार करते हुए कहा कि

किसी आदेश को दूषित नहीं कहा जा सकता है यदि वह किसी ऐसे अधिकारी द्वारा पारित किया गया है जिसने सुनवाई नहीं की है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद यहाँ पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

> *"62. अब यह सुस्थापित हो गया है कि सरकार द्वारा पारित प्रशासनिक कार्रवाई/अर्ध-न्यायिक आदेशों की न्यायिक समीक्षा केवल कानून की त्रुटियों या मौलिक प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं को सुधारने तक सीमित है जो अन्याय के प्रकटन का कारण बन सकते हैं। जब प्राधिकरण के निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित होते हैं, तो न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उनकी पुनः सराहना नहीं की जा सकती है।* ***<u>न्यायालय न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग नहीं करता है। यह केवल उन मामलों में है जहां प्रशासनिक/अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष किसी भी सबूत पर आधारित नहीं हैं या इतने अनुचित हैं कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता कि न्यायालय निर्णय में हस्तक्षेप करना न्यायसंगत होगा। न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक सीमित है न कि स्वयं निर्णय तक, भले ही वह गलत प्रतीत हो।</u>***
>
> *63. इस न्यायालय ने टाटा सेल्युलर बनाम भारत संघ [(1994) 6 एस.सी.सी. 651] मामले में उन मापदंडों पर विस्तृत विचार करने के बाद, जिनके भीतर न्यायिक समीक्षा का प्रयोग किया जा सकता है, निम्नलिखित सिद्धांतों को निकाला हैः (एस.सी.सी. अनु. 675 और 677-78, अनु. 70 और 77)*
>
> *"70. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि न्यायिक समीक्षा के समीक्षा के सिद्धांत मनमाने तरीके या पक्षपात को रोकने के लिए सरकारी निकायों द्वारा संविदात्मक शक्तियों के प्रयोग पर लागू होंगे हालाँकि, यह स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए कि न्यायिक समीक्षा की उस शक्ति के प्रयोग में अंतर्निहित सीमाएँ हैं। सरकार राज्य के वित्त की संरक्षक होती है।*

इससे राज्य के वित्तीय हितों की रक्षा होने की उम्मीद है। सबसे कम या किसी अन्य निविदा को अस्वीकार करने का अधिकार सरकार के पास हमेशा उपलब्ध होता है। लेकिन, निविदा स्वीकार या अस्वीकार करते समय संविधान के अनुच्छेद 14 में निर्धारित सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि सरकार सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति या सर्वश्रेष्ठ उद्धरण प्राप्त करने का प्रयास करती है तो अनुच्छेद 14 के उल्लंघन का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है। चुनने के अधिकार को मनमानी शक्ति नहीं माना जा सकता है। बेशक, यदि उक्त शक्ति का प्रयोग किसी संपार्श्विक उद्देश्य के लिए किया जाता है तो उस शक्ति का प्रयोग समाप्त कर दिया जाएगा।

***

77. न्यायालय का कर्तव्य स्वयं को वैधता के प्रश्न तक ही सीमित रखना है। इसकी चिंता होनी चाहिए:

(1) क्या निर्णय लेने वाले प्राधिकरण ने अपनी शक्तियों को पार कर लिया है?
(2) विधि में त्रुटी की,
(3) प्राकृतिक न्याय के नियमों को भंग करते हुए,
(4) एक ऐसे निर्णय पर पहुंचे जो कोई उचित न्यायाधिकरण तक नहीं पहुंचा होगा, या
(5) अपनी शक्तियों का दुरुपयोग किया।

इसलिए, यह निर्धारित करना न्यायालय का काम नहीं है कि उस नीति की पूर्ति में ली गई कोई विशेष नीति या विशेष निर्णय उचित है या नहीं। यह केवल उस तरीके से संबंधित है जिसमें वे निर्णय लिए गए हैं। निष्पक्ष रूप से कार्य करने के कर्तव्य की सीमा अलग-अलग मामले में अलग-अलग होगी। संक्षेप में, जिन आधारों पर एक प्रशासनिक कार्रवाई न्यायिक समीक्षा द्वारा नियंत्रण के अधीन है उन्हें निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है:

(i) अवैधताः इसका मतलब है कि निर्णय लेने वाले को उस कानून को सही ढंग से समझना चाहिए जो उसकी निर्णय लेने की शक्ति को नियंत्रित करता है और उसे प्रभावी बनाना चाहिए।

(ii) तर्कहीनता, अर्थात् वेड्नसबरी तर्कहीनता।

(iii) प्रक्रियात्मक अनौचित्य।

उपरोक्त केवल व्यापक आधार हैं लेकिन यह समय के साथ और अधिक आधार जोड़ने से इंकार नहीं करता है।"

"उपरोक्त निर्णय का बार-बार पालन किया गया है। उक्त निर्णय में यह स्पष्ट रूप से देखा गया था कि जहां न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि प्रशासनिक निर्णय मनमाना है तो उसे हस्तक्षेप करना चाहिए। हालाँकि, न्यायालय प्रशासक के निर्णय को प्रतिस्थापित करने वाले अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं कर सकता है।"

70. हम श्री कृष्णन द्वारा प्रस्तुत किए गए निवेदन में भी अधिक बल नहीं पाते हैं कि दिनांक 27-9-2001 का आदेश दूषित है क्योंकि यह एक ऐसे अधिकारी द्वारा पारित किया गया है जिसने पक्षकारों को नहीं सुना था। यह स्पष्ट रूप से एक संस्थागत सुनवाई का मामला है। *केंद्र सरकार द्वारा सुनवाई के लिए उच्च न्यायालय द्वारा निर्देश जारी किया गया है। ऐसा कोई निर्देश नहीं था कि कोई विशेष अधिकारी या प्राधिकरण को पक्षकारों को सुनना था। ऐसी परिस्थितियों में, आदेश आम तौर पर संबंधित फाइलों में पारित किए जाते हैं और अक्सर सुनवाई करने वाले अधिकारी के अलावा किसी अन्य अधिकारी द्वारा सूचित किए जा सकते हैं।*

[जोर दिया गया]

98. इस पहलू पर, प्रत्यर्थी सं. 2- स्कूल के विद्वान अधिवक्ता ने ***ओसेन और जिलेटिन (पूर्वोक्त),*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख किया है जिसमें अनुच्छेद सं. 5 और 6 के संदर्भ में यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था कि:

"5. प्राकृतिक न्याय के मुद्दे पर, हम संतुष्ट हैं कि अपीलकर्ता द्वारा इंगित किसी भी परिस्थिति से अपीलकर्ता के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं किया गया है। ***यह सच है कि आदेश एक अधिकारी द्वारा पारित किया गया है जो***

पक्षकारों को सुनने वाले अधिकारी से अलग है। हालाँकि, कार्यवाही औपचारिक न्यायिक सुनवाई की प्रकृति में नहीं थी। वे बैठकों की प्रकृति में थे और प्रत्येक बैठक में चर्चा किए गए सभी बिंदुओं के पूरे कार्यवृत्त को दर्ज किया गया था। यह हमारे ध्यान में नहीं लाया गया है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा आग्रह किए गए किसी भी मुख्य बिंदु को छोड़ दिया गया है। इसके विपरीत, आदेश स्वयं याचिकाकर्ताओं की सभी महत्वपूर्ण आपत्तियों को संक्षेप में प्रस्तुत करता है और उनसे निपटता है। इसलिए, इस परिस्थिति ने याचिकाकर्ताओं के लिए कोई पूर्वाग्रह नहीं दिया है। *आदेश पारित करने में देरी भी, उपरोक्त परिस्थितियों में, किसी भी सुझाव की अनुपस्थिति में आदेश को दूषित नहीं करती है कि अधिकारियों के ध्यान में लाए गए अंतराल में परिस्थितियों में बदलाव हुआ है या आदेश पारित करने वाला प्राधिकारी इस तरह की देरी के कारण किसी विशेष पहलू से निपटना भूल गया है। यह तर्क कि मोदी के आवेदन ने बोनमील को कच्चे माल के रूप में संदर्भित किया था और इसे बाद में "कुचली हुई हड्डियों" में बदल दिया गया था जो कि व्यर्थ है क्योंकि यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ताओं को हमेशा से पता था कि बोनमील का संदर्भ गलत था और मोदी अपनी परियोजना में कुचली हुई हड्डियों का उपयोग करने जा रहे थे। अंतिम प्रतिविरोध यह है कि मोदी द्वारा सुनवाई के दौरान कुछ दस्तावेज पेश किए गए थे जिन पर याचिकाकर्ता प्रभावी ढंग से विचार नहीं कर सके, यह भी प्रभावहीन है क्योंकि निश्चित रूप से, निर्धारिती के प्रतिनिधियों को वे दस्तावेज दिखाए गए थे लेकिन उन्होंने उन पर विचार करने और उनके प्रभाव का विरोध करने के लिए कोई समय नहीं मांगा था। अतः वास्तव में याचिकाकर्ताओं के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं रहा है।* ***उनकी निष्पक्ष सुनवाई हुई है और सभी पक्ष और विपक्ष पर विचार करने के बाद सरकार का निर्णय लिया गया है। हम इसमें हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं ढूंढ पा रहे हैं।***

6. हमारे समक्ष एक बड़े सवाल पर कुछ चर्चा हुई थी कि क्या प्राकृतिक न्याय की अपेक्षा का अनुपालन किया जा सकता है जहां एक अधिकारी द्वारा पक्षों की आपत्तियों को एक अधिकारी द्वारा सुना जाता है लेकिन आदेश दूसरे अधिकारी द्वारा पारित किया जाता है। श्री साल्वे ने स्थानीय

*शासन बोर्ड बनाम अल्रिज [1915 ए.सी. 120 : 84 एल.जे.के.बी. 72], रिज बनाम बाल्डविन [1964 ए.सी. 40 : (1963) 2 आल ई.आर. 66 : (1963) 2 डब्ल्यू.एल.आर. 3], रेजिना बनाम रेस रिलेशंस बोर्ड, एकपक्षीय सेल्वराजन [(1975) 1 डब्ल्यू.एल.आर. 1686] और डी स्मिथ की न्यायिक समीक्षा प्रशासनिक कार्रवाई (चौथा संस्करण, पी.पी. 219-220) ने प्रस्तुत किया कि यह आवश्यक नहीं था और प्राकृतिक न्याय की सामग्री जांच की प्रकृति, के साथ भिन्न होगी, कार्यवाही के उद्देश्य और शामिल निर्णय क्या एक "संस्थागत" निर्णय है या विशेष रूप से एक सशक्त अधिकारी द्वारा लिया गया है, दूसरी ओर, श्री दीवान ने बताया कि गुल्लापल्ली नागेश्वर राव बनाम ए.पी.एस.आर.टी.सी. [ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 308 : 1959 एस.यू.पी.पी. 1 एस.सी.आर. 319] में बहुमत के निर्णय ने एल्रिज मामले [1915 ए.सी. 120 : 84 एल.जे.के.बी. 72] को वेड [प्रशासनिक कानून, 6वीं संस्करण, पी.507 आदि।] द्वारा निपटाया गया है हमारी राय है कि वर्तमान मामले के उद्देश्यों के लिए इस मुद्दे पर निर्णय (एस.आई.सी.चर्चा) लेना अनावश्यक है। **<u>यहाँ मुद्दा सरकार द्वारा अनुमोदन प्रदान करने का है न कि किसी विशेष अधिकारी को वैधानिक रूप से नामित करने का। अभिलेख पर यह भी पूरी तरह से स्पष्ट है कि आदेश पारित करने वाले अधिकारी ने याचिकाकर्ताओं द्वारा रखी गई सभी आपत्तियों पर पूरा संज्ञान लिया है। इसलिए, हम पूरी तरह से संतुष्ट हैं कि वर्तमान मामले में प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताओं को पूरा किया गया है।</u>**

[जोर दिया गया]

99. उन्होंने ***रोनपाल बायोटेक (पूर्वोक्त)*** मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के एक निर्णय पर भी भरोसा किया है जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि चूंकि आदेश उसी अधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया था जिसने सुनवाई की है इसलिए उक्त आदेश दूषित था। अनुच्छेद सं. 42 के सन्दर्भ में इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है कि:-

<u>"42. जहाँ तक याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील का सवाल है कि आदेश दूषित है क्योंकि सुनवाई एक अधिकारी द्वारा की गई थी और आदेश दूसरे अधिकारी द्वारा पारित किया गया है में मुझे पुन: कोई गुणागुण नहीं मिलता है। वर्तमान मामले में, मौखिक सुनवाई के बाद एक याचिकाकर्ता का विस्तृत लिखित प्रतिनिधित्व किया गया था।</u>

प्रत्यर्थीगण की कार्यालय फाइल से पता चलता है की उक्त उत्तर को प्रत्यर्थीगण द्वारा व्यापक माना गया था। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को एक निर्धारित सूत्र में नहीं रखा जा सकता है जहां प्राकृतिक न्याय के कुछ पहलुओं का सख्ती से पालन करने में प्राधिकरण की विफलता के कारण कोई पूर्वाग्रह नहीं दिखाया गया है, पारित आदेश को केवल इस आधार पर बाधित नहीं किया जा सकता है कि कलिंग खनन निगम बनाम भारत संघ (यू.ओ.आई.) और अन्य (2013) 1 एस.सी.आर. 814, और ओसेन और जिलेटिन मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया बनाम मोदी अल्कलीज और केमिकल्स लिमिटेड और अन्य ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 1744, में उच्चतम न्यायालय ने माना है कि जहाँ आदेश पारित करने वाले अधिकारी ने संबंधित पक्ष की प्रस्तुतियों/आपत्तियों का पूरा ध्यान दिया है और किसी अधिकारी द्वारा पारित किए जा रहे आदेश से कोई पूर्वाग्रह नहीं दिखाया गया है जो कि मौखिक सुनवाई के बाद प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को विधिवत पूरा किया माना जाएगा।"

[जोर दिया गया]

100. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है इस पहलू पर न्यायिक घोषणाओं की धाराएं कि क्या एक आदेश उस अधिकारी द्वारा अनिवार्य रूप से पारित किया जाना चाहिए जिसने वास्तव में कार्यवाही को सुना है, इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को बनाए रखने में एक अनुचित दृष्टिकोण माना जाता है। इसलिए, याचिकाकर्ता के तर्क में कोई गुणागुण नहीं है कि इस तरह के तकनीकी आधारों पर आक्षेपित आदेश अपास्त किया जा सकता है। यह

अतिसामान्य है कि प्रक्रिया के नियम केवल न्याय की दासी हैं और न्याय की मालकिन नहीं| साथ ही, यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अनिवार्यताएं हमेशा चलती रहती है और स्थानांतरण उसी का एक अनिवार्य हिस्सा है। केवल इसलिए कि संबंधित अधिकारी को स्थानांतरित कर दिया गया था इसने संबंधित सामग्री को विस्थापित नहीं किया जो अधिकारी के समक्ष रखी गई थी और यह प्रश्न में भी नहीं है कि निर्णय प्रासंगिक सामग्री के बल पर पारित किया गया था।

101. इस अवसर पर, ***सुधीर कुमार (पूर्वोक्त)*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना भी उचित है जिसमें न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि स्वीकृत या निर्विवाद तथ्यों के मामले में जहाँ केवल एक ही निष्कर्ष संभव है, प्राकृतिक न्याय के पालन के लिए एक रिट जारी करना व्यर्थ होगा। उक्त निर्णय का अनुच्छेद सं. 28 निम्नानुसार है:-

> ***"28. इस न्यायालय के कुछ प्रारंभिक निर्णयों में प्राकृतिक न्याय का पालन न करने को अपने आप में प्रभावित व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह कहा गया था और प्राकृतिक न्याय के इनकार के प्रमाण से स्वतंत्र पूर्वाग्रह के प्रमाण को अनावश्यक माना गया था। इस नियम का एकमात्र अपवाद यह है कि जहां "स्वीकृत या निर्विवाद" तथ्यों पर केवल एक निष्कर्ष संभव है और कानून के तहत केवल एक दंड की अनुमति है। ऐसे मामलों में, कोई न्यायालय प्राकृतिक न्याय के पालन के लिए मजबूर करने के लिए अपनी रिट जारी नहीं कर सकता है इसलिए नहीं कि प्राकृतिक न्याय का पालन करना आवश्यक नहीं है बल्कि इसलिए कि न्यायालय ऐसी रिट जारी नहीं करते हैं जो "निरर्थक" हैं***- *अनुच्छेद 24 में एस.एल. कपूर बनाम जगमोहन (1980) 4 एस.सी.सी. 379 देखें। पी.डी. अग्रवाल बनाम भारतीय स्टेट बैंक (2006)*

8 एस.सी.सी. 776 में, हालांकि, न्यायालय ने कहा कि कानून के इस कथन में "बड़ा परिवर्तन" हुआ है, जो इस प्रकार है:

39. एस.एल. कपूर बनाम जगमोहन [(1980) 4 एससीसी 379] में इस न्यायालय का निर्णय, जिस पर श्री राव ने यह तर्क देने के लिए दृढ़ता से भरोसा व्यक्त किया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन न करना ही पूर्वाग्रह का कारण बनता है या इसे नहीं पढ़ा जाना चाहिए "क्योंकि यह पूर्वाग्रह की कठिनाई का कारण बनता है", इसे तत्काल मामले में लागू नहीं कहा जा सकता है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों में, जैसा कि यहाँ पहले देखा गया है, बड़ा परिवर्तन आया है। स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. शर्मा [(1996) 3 एस. सी. सी. 364] और राजेंद्र सिंह बनाम एम.पी. राज्य [(1996) 5 एस.सी.सी. 460] कानून का सिद्धांत यह है कि शिकायतकर्ता के प्रति कुछ वास्तविक पूर्वाग्रह रहा होगा। न्यायालय ने अपनी पूर्व की अवधारणा से बदलाव किया है कि एक छोटा उल्लंघन भी आदेश को शून्य बना देगा। दूसरे पक्ष को भी सुनने के नियम/सिद्धांत के लिए, उन मामलों के बीच एक स्पष्ट अंतर निर्धारित किया गया है जहां कोई सुनवाई नहीं हुई थी और उन मामलों के बीच जहां सिद्धांत का केवल तकनीकी उल्लंघन हुआ था। न्यायालय प्रत्येक मामले में प्राप्त तथ्य स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को लागू करता है। इसे मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ के बिना शून्य में लागू नहीं किया जाता है। यह कोई अनियंत्रित घोड़ा नहीं है। इसे निश्चित सूत्र में नहीं रखा जा सकता है।"

[जोर दिया गया]

102. इसके अलावा, ***मोह. सरताज (पूर्वोक्त)*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद सं. 17 और 18 के संदर्भ में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

17. एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ [(1999) 6 एससीसी 237] में इस न्यायालय ने निर्धारित किया है ***<u>कि एक निश्चित स्थिति हो सकती है</u>***

<u>जिसमें प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन में पारित आदेश को संविधान का अनुच्छेद 226 के तहत अपास्त नहीं किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जहां संबंधित व्यक्ति के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं है वहां अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।</u>

*18. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान [(2000) 7 एससीसी 529 : 2000 एससीसी (एल&एस) 965 एआईआर 2000 एससी 2783] मामले में इस न्यायालय ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या मामले के तथ्यों पर कर्मचारी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का आह्वान कर सकता है और क्या यह एक ऐसा मामला है जहां, भले ही नोटिस दिया गया हो, परिणाम अलग नहीं होता और क्या यह कहा जा सकता है कि उसके प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ था, अगर स्वीकार किए गए या सिद्ध तथ्यों पर अवसर देने से कोई फर्क नहीं पड़ता। न्यायालय ने एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ [(1999) 6 एस.सी.सी. 237] में दिए गए निर्णयों, एस.एल. कपूर मामले [(1980) 4 एससीसी 379] और के.एल. त्रिपाठी बनाम भारतीय स्टेट बैंक [(1984) 1 एस.सी.सी. 43 में निर्धारित अपवादों का उल्लेख कियाः1984 एससीसी (एल&एस) 62 : एआईआर 1984 एस.सी. 273] जहाँ यह निर्धारित किया गया है कि न केवल प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन बल्कि वस्तुत: पूर्वाग्रह (नोटिस जारी न करने के अलावा) को साबित करना होगा। न्यायालय ने स्टेट बैंक ऑफ पटियाला बनाम एस.के. शर्मा [(1996) 3 एससीसी 364 : 1996 एससीसी (एल&एस) के मामले में भी निर्भरता रखी हैः1996 एससीसी (एल.एंड. 717] और राजेंद्र सिंह बनाम एम.पी. राज्य [(1996) 5 एससीसी 460] जहां यह सिद्धांत निर्धारित किया गया है कि शिकायतकर्ता के प्रति कुछ वास्तविक पूर्वाग्रह रहा होगा। प्राकृतिक न्याय का केवल तकनीकी उल्लंघन जैसी कोई बात नहीं है। न्यायालय द्वारा इस सिद्धांत को मंजूरी दे दी है और उस संदर्भ में कर्मचारी के मामले की जांच की है। विवेकानंद सेठी बनाम अध्यक्ष, जे&के बैंक लिमिटेड [(2005) 5 एससीसी 337 : 2005 एससीसी (एल&एस) 689] इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि **<u>प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन उसमें प्राप्त होने वाली तथ्य स्थिति के संबंध में किया जाना आवश्यक है। इसे निर्धारित सूत्र में नहीं रखा जा सकता है। इसे मामले के प्रासंगिक तथ्यों</u>***

<u>और परिस्थितियों के संदर्भ के बिना शून्य में लागू नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत अतिसामान्य है कि कोई अनियंत्रित घोड़ा नहीं है। जब तथ्यों को स्वीकार किया जाता है तो जांच एक खाली औपचारिकता होगी।</u> *यहां तक कि विबंध का सिद्धांत भी लागू होगा। यू.पी. राज्य बनाम नीरज अवस्थी [(2006) 1एस.सी.सी. 667 : जे.टी. (2006) 1 एस.सी. 19] के एक अन्य हालिया निर्णय में इस तर्क पर विचार करते हुए कि कर्मचारियों की सेवा समाप्त करने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की अनदेखी की गई थी और इसलिए कर्मचारियों की सेवा समाप्त करने का आदेश कानूनी रूप से अनुचित था, इस न्यायालय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और उन हद और परिस्थितियों पर विचार किया है जिनमें वे आकर्षित होते हैं। इस न्यायालय ने नीरज अवस्थी मामले [(2006) 1 एससीसी 667 में पाया है : जे.टी. (2006) 1 एससी 19] में पाया है कि यदि श्रमिकों की सेवाएं यू.पी. औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा शासित हैं तो वे उस कानून के तहत संरक्षित हैं। उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद के नियम 42 और 43 में कहा गया है कि किसी भी छंटनी को लागू करने से पहले संबंधित कर्मचारी एक महीने के नोटिस या उसके बदले में एक महीने के वेतन और मुआवजे के रूप में सेवा के प्रत्येक पूरे वर्ष के लिए 15 दिनों के वेतन के हकदार होंगे। यदि औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत छंटनी की जानी है तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने का सवाल ही नहीं उठेगा। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत तभी लागू होंगे जब कुछ व्यक्तियों को एक दंडात्मक उपाय के माध्यम से समाप्त किया जाता है या इस तरह एक कलंक संलग्न किया जाता है। इस सिद्धांत को लागू करते हुए यह बहुत अच्छी तरह से देखा जा सकता है कि वर्तमान मामले में अपीलार्थीगण की सेवा को बंद करना एक दंडात्मक उपाय के रूप में नहीं था बल्कि उन्हें इस कारण से समाप्त कर दिया गया था चूँकि वे योग्य नहीं थे और उनके पास नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता नहीं थी।*

[जोर दिया गया]

103. किसी भी मामले में, ***कलिंग खनन (पूर्वोक्त)*** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि यह न्यायालय

न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपील न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग नहीं करता है। किसी भी हस्तक्षेप की मांग केवल उन मामलों में की जाएगी जहां प्रशासनिक प्राधिकरण के निष्कर्ष या तो विकृत हैं या अपेक्षित साक्ष्य की कमी है। दोहराए जाने की कीमत पर, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि न्यायिक समीक्षा का दायरा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक सीमित है न कि स्वयं निर्णय तक भले ही वह अवांछनीय प्रतीत हो। इस मामले में, याचिकाकर्ता कोई ठोस कारण दिखाने में विफल रहा है जो यह इंगित करता है याचिकाकर्ता या उसके पिता को अपना मामला पेश करने में सक्षम बनाने के लिए एक निष्पक्ष सुनवाई की प्रक्रिया में या तो उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था या याचिकाकर्ता के प्रति कोई वास्तविक पूर्वाग्रह पैदा हुआ है।

104. निष्कर्षतः, यह याचिकाकर्ता के पिता का गहन अपराध है जो अपने बेटे के प्रवेश के लिए तडप रहा है जो लागू नियमों की सीमा से परे है जिसके कारण याचिकाकर्ता को पीड़ा हुई है इससे उन नेक उद्दश्यों की पराजय हुई जिन्हें ईडब्ल्यूएस आरक्षण हासिल करना चाहता है।

105. माननीय उच्चतम न्यायालय ने निजी गैर-सहायता प्राप्त विद्यालयों में आर्थिक रूप से गरीबों के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण की वैधता को बरकरार रखते हुए ***सोसायटी फॉर अनएडिड प्राइवेट स्कूल्स ऑफ राजस्थान बनाम यूनियन ऑफ इंडिया***[27] के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"32. अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन से वंचित नहीं किया जाएगा" जबकि "स्वतंत्रता का अधिकार" अध्याय के तहत अनुच्छेद 19(1)(छ) में कहा गया है कि सभी नागरिकों को किसी भी पेशे को करने या किसी भी पेशे, व्यापार या व्यवसाय को करने का अधिकार है जो स्वतंत्रता आत्यन्तिक नहीं है लेकिन जिसे आम जनता के हित में अनुच्छेद 19(6) के तहत सामाजिक नियंत्रण के अधीन किया जा सकता है। न्यायिक निर्णयों द्वारा शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद 21 में जीवन के अधिकार में परिलक्षित किया गया है। एक बच्चा जिसे शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित किया जाता है, वह न केवल गरिमा के साथ जीने के अपने अधिकार से वंचित है बल्कि वह अनुच्छेद 19(1)(क) में निहित बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अपने अधिकार से भी वंचित है। 2009 के अधिनियम में वित्तीय और मनोवैज्ञानिक बाधाओं सहित उन सभी बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया गया है जिनका सामना कमजोर वर्ग और वंचित समूह से संबंधित बच्चे को प्रवेश लेते समय करना पड़ता है।"

106. इसलिए, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्थिक रूप से हाशिए पर मौजूद वर्गों के लाभ के लिए कानून के अधिनियमन के पीछे विधायी उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि गरीबी की बेड़ियों को तोड़ा जाए ताकि कमजोर वर्गों के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने में मदद मिल सके। इस प्रकार, स्कूलों में ईडब्ल्यूएस आरक्षण न केवल एक आकर्षक वादा है बल्कि एक बहुआयामी सामाजिक-आर्थिक संरचना में सभी के लिए शिक्षा के समान मानकों को बनाए रखने का एक ईमानदार प्रयास है। जो संविधान के संरक्षक के रूप में, मनमानेपन को समाप्त करने का प्रयास करता है, यह न्यायालय किसी को

भी छल करके विचाराधीन कल्याणकारी कानून की योजना पर हावी होने की अनुमति नहीं दे सकता है।

107. उपरोक्त के आलोक में, इस न्यायालय को कारण बताओ नोटिस और आक्षेपित आदेश दिनांकित 09.02.2021 के साथ-साथ प्रत्यर्थी सं.2 स्कूल द्वारा जारी पत्र दिनांक 15.02.2021 में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है।

108. हालाँकि, यह न्यायालय इस तथ्य से भी अवगत है कि याचिकाकर्ता पूरी कथा में दोषी नहीं है। यह याचिकाकर्ता का पिता है जिन्होंने उन कुकर्मों को कायम रखा जिनके लिए याचिकाकर्ता को इस विलंबित चरण में पीड़ित नहीं किया जाना चाहिए, ठीक उसी समय जब याचिकाकर्ता 2013 से अपनी पढ़ाई जारी रखे हुए है। इसलिए, वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में यह न्यायालय निर्देश देती है कि प्रत्यर्थी सं. 2-स्कूल में याचिकाकर्ता का प्रवेश अबाधित रहेगा। हालाँकि, याचिकाकर्ता के प्रवेश और उसके बाद उसकी निरंतर शिक्षा को ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी के स्थान पर सामान्य श्रेणी के तहत मान्यता दी जाएगी। शुल्क के भुगतान सहित सामान्य श्रेणी के छात्रों के प्रवेश को नियंत्रित करने वाले मौजूदा नियम और विनियम इसके बाद लागू होंगे।

109. हालांकि, उपरोक्त निर्देश भारी लागत के अधीन है जो अवैध तरीकों से ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी के तहत प्रवेश प्राप्त करने और एक योग्य उम्मीदवार को वंचित करने के लिए तत्काल मामले में लगाया जाना चाहिए। इस तथ्य को

ध्यान में रखते हुए कि इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण कुछ नहीं हो सकता है कि नैतिकता और नैतिक मूल्यों को सीखने के स्तर पर स्कूल जाने वाले बच्चे को अपने पिता के कुकर्मों के कारण पीड़ित होना पड़ा और याचिकाकर्ता के प्रवेश को रद्द करने के बदले में 09.02.2021 और 15.02.2021 दिनांकित आदेशों के माध्यम से और याचिकाकर्ता के प्रवेश को जारी रखने के बदले में केवल 10,00,000/- रूपये (केवल दस लाख रुपये) की राशी जुर्माने के रूप में लगाई जाती है। इस निर्णय के पारित होने के छह महीने के भीतर प्रत्यर्थी सं.2-स्कूल के पास जमा किया जाए। उक्त राशि का उपयोग प्रत्यर्थी सं. 2 ई.डब्लू.एस श्रेणी के तहत स्कूल में भर्ती बच्चों की जरुरत और सहायत के लिए किया जाएगा जिसकी सूचना प्रत्यर्थी सं.1-डी.ओ.ई. को दी जाएगी।

110. उपरोक्त जुर्माना याचिकाकर्ता के पिता की समृद्ध वित्तीय स्थिति का आकलन करने के बाद लगाया गया है जो बाद के वर्षों के आई.टी.आर., कई विदेशी यात्राएं आदि से स्पष्ट है और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता ने एक योग्य बच्चे की सीट ली है जो अन्यथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के भाग्य का आनंद लेता। यदि याचिकाकर्ता के पिता द्वारा उपरोक्त निर्धारित छह महीने के भीतर जुर्माना जमा नहीं किया जाता है तो याचिकाकर्ता का प्रवेश दिनांकित 09.02.2021 और 15.02.2021 के आक्षेपित आदेशों के अनुसार रद्द माना जाएगा और राशि याचिकाकर्ता के पिता से भू-राजस्व के अवशिष्ट के रूप में वसूल की जायगी।

111. कहा जाता है कि न्यायपालिका लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने के एकमात्र उद्देश्य के साथ उनके द्वारा निभाई गई संबंधित संवैधानिक भूमिकाओं के माध्यम से विधायिका के साथ निरंतर बातचीत में मौन रूप से काम करती है। उक्त संवाद विधायिका अथवा कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र से विशिष्ट नहीं है और न्यायपालिका, एक संवैधानिक मध्यस्थ के रूप में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण, मामला-दर-मामला के आधार पर समाज के साथ एक समानांतर संवाद में संलग्न होता है। वास्तव में, इस संवादात्मक न्यायशास्त्र को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा विभिन्न मुद्दों से निपटने के दौरान स्वीकार किया गया है और संवैधानिक दृष्टि को पूरा करने के लिए एक प्रभावी उपकरण साबित हुआ है। इसलिए, अलग होने से पहले, स्कूलों में ई.डब्ल्यू.एस. आरक्षण योजना के लाभों का लाभ उठाने के लिए निर्धारित आय मानदंड पर फिर से विचार करने के लिए स्पष्ट आह्वान को उजागर करना महत्वपूर्ण है। जबकि वर्तमान मामले पर का निर्णय सुनाते हुए, इस न्यायालय के संज्ञान में आया है कि दिल्ली में एक अकुशल मजदूर की न्यूनतम मजदूरी 17,494/- रुपए प्रति माह है लेकिन यह आश्चर्यजनक है कि मौजूदा पात्रता के मानदंड के अनुसार ऐसे मजदूरों के बच्चे भी स्कूलों में प्रवेश हासिल करने के लिए ई.डब्ल्यू.एस. योजना का लाभ उठाने के हक़दार नहीं हैं। कल्पना के किसी भी विवेकपूर्ण विस्तार पर यह मानने के लिए असवाभाविक बात है कि ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी के तहत प्रवेश पाने वाले और दिल्ली जैसे महानगरीय शहर

में रहने वाले बच्चे के माता-पिता की कुल आय 1,00,000/- रूपये प्रति वर्ष से कम होगी।

112. इस न्यायालय की सुविचारित राय में 1,00,000/- रुपए की आय सीमा समकालीन समय में परिवारों द्वारा सामना की जाने वाली आर्थिक कठिनाइयों को सटीक रूप से प्रतिबिंबित नहीं करती है और इसलिए इसे समाज की आर्थिक संरचना की गतिशीलता के साथ बदलना चाहिए। शेष राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के साथ दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में उक्त प्रारंभिक आय मानदंड का तुलनात्मक विश्लेषण यह दर्शाता है रा.रा.क्षे.दिल्ली में 8 लाख रूपये प्रति वर्ष की राशि की तुलना में सबसे कम अपेक्षित आय मानदंड है जिसके बाद अधिकांश राज्यों का स्थान आता है। यह स्पष्ट रूप से आम लोगों को, जो अन्यथा आर्थिक स्तर के निचली श्रेणी में आते हैं, को मजबूर कर रहा है कि वह अपने बच्चों के प्रवेश को सुरक्षित करने या कल्याणकारी कानूनों के लाभों से अपने-आप को दूर रखने के लिए अनुचित साधनों का सहारा लें| वर्तमान समय में, अन्याय न्यायालयों तक शायद पहुँच सकता है या नहीं भी लेकिन संवैधानिक न्यायालय को अन्याय तक पहुँचने का प्रयास करना होगा|

113. शिक्षा के मौलिक अधिकार से प्रवाहित समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के शैक्षिक अधिकारों की रक्षा के संचालन के लिए राज्य के अधिकारियों के पूर्ण बेपरवाही और लापरवाही के रवैये को देखना बहुत ही कष्टप्रद है। संविधान के अंतर्निहित उद्देश्यों की प्रभावी प्राप्ति केवल प्रारूपण और अवलोकन से परे

है। कानून के अक्षरश: भावना का सम्मान करने के लिए यह आवश्यक है कि जिम्मेदार साधन कानून के कार्यान्वयन की ठीक से निगरानी करें। हालाँकि, एक कानून, जो अपने इरादों में हितकारी है, तब तक अप्रभावी रहता है जब तक कि उसे निष्पादित करने और कार्यान्वयन के लिए चुने गए लोग विवेकपूर्ण ढंग से अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करते हैं। यह लाभकारी विधानों के संदर्भ में अधिक प्रासंगिक हो जाता है जो समाज के हाशिए पर रहने वाले व्यक्तियों की जरूरतों को पूरा करते हैं।

114. परिवर्तनकारी संविधानवाद के विचार की इमारत ही संवैधानिक नैतिकता के स्तंभ पर टिकी हुई है। इसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए समाज में समानता, गरिमा, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को स्थापित आदेश जैसे परिवर्तनकारी लक्ष्यों को प्राप्त आदेश के लिए संविधान के नैतिक मानकों का पालन करना है। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के अप्रचलित 'अराजकता का व्याकरण' भाषण के अंशों को याद करना महत्वपूर्ण है जिसमे उन्होंने टिप्पणी की थी,

> *"क्योंकि मुझे लगता है कि संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, इसका बुरा होना निश्चित है क्योंकि जिन लोगों को इसे बनाने के लिए बुलाया जाता है, वे बहुत बुरे होते हैं। हालाँकि संविधान कितना भी बुरा क्यों न हो, यह अच्छा साबित हो सकता है अगर जिन लोगों को इसे लागु करने के लिए बुलाया जाता है, वे बहुत अच्छे होते हैं।"*

115. वर्तमान मामले में, यह इंगित करने के लिए कोई तथ्य नहीं है कि प्रत्यर्थी सं.1-डी.ओ.ई. या सरकार ने उम्मीदवारों की वास्तविकता का परीक्षण

करने के लिए कोई यादृच्छिक जांच की है। यदि इस चरण में जांच का निर्देश दिया जाता है तो यह संभवतः शिक्षा प्रणाली में बर्बादी और अव्यवस्था पैदा कर सकता है। बड़ी संख्या में स्व-घोषणाओं को गलत पाए जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए, प्रमाण पत्र जारी करने के तरीके को अधिक उत्तरदायी, विश्वसनीय और पारदर्शी बनाया जाना चाहिए ताकि यह सही लाभार्थियों को लाभान्वित कर सके। लाभ प्राप्त करने के लिए प्रमाण-पत्र जारी करने की कुछ पवित्रता होनी चाहिए और इसे तुच्छ आधार पर जारी नहीं किया जाना चाहिए।

116. यह भी ध्यान देना योग्य है कि 2011 के आदेश के अनुसार ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी में प्रवेश जारी रखने के उद्देश्य से आवश्यक आय प्रमाण-पत्र केवल आय की स्व-घोषणा पर आधारित है जो योग्य उम्मीदवारों के दुख को और बढ़ाता है क्योंकि ऐसे प्रमाण-पत्र इसकी सत्यता की जांच के लिए किसी भी लचीले ढांचे के अभाव में गलत बयानी के अधिक तरीके से प्रस्तुत किए जाने के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं|

117. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 1-डी.ओ.ई. से सहायता लेना उचित समझा और तदनुसार दिनांक 30.10.2023 पर निदेशक, डी.ओ.ई. की व्यक्तिगत उपस्थिति को कुछ प्रासंगिक पहलुओं को स्पष्ट करने का निर्देश दिया गया था। दिनांक 01.11.2023 को निर्देशक, डी. ओ.ई. न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और अवगत कराया गया कि इस

न्यायालय द्वारा उठाई गई चिंताओं के अनुसार, उन्होंने 2011 के आदेश के अनुसार प्रारंभिक आय को सीमा मौजूदा 1 लाख रूपए से 2.50 लाख रपए प्रति वर्ष करने का प्रस्ताव दिया है। हालाँकि, प्रस्तावित वृद्धि से रा.रा.क्षे. दिल्ली के स्कूलों की दयनीय स्थिति में कोई सुधार नहीं होता है।

118. कल्याणकारी विधान एक कल्याणकारी राज्य के हृदय और आत्मा हैं और एक समतावादी समाज के आदर्शों को साकार करने में उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं और भाग्य के साथ हमारे राष्ट्र के प्रयास के उद्देश्य को मजबूत करते हैं। इस तरह के कल्याणकारी उपायों को प्रभावित करने वाले प्रासंगिक कारकों पर विचार करते हुए उपयुक्त सरकार से समाज की बदलती जरूरतों को पूरा करने की उचित रूप से अपेक्षा की जाती है। वास्तव में, यह राज्य का दायित्व है कि वह अपने लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करने की दिशा में प्रयास करें जो भारत के संविधान की प्रस्तावना में गहराई से अंतर्निहित है। इसलिए, यदि उपयुक्त सरकार ऐसे कानूनों को ठंडे बस्ते में डालने का फैसला करती है तो कभी-कभी न्यायपालिका को उन लोगों के लिए कदम उठाना पड़ता है जिनके पास इच्छित लाभ प्राप्त करने के लिए साधनों की कमी होती है।

119. उपरोक्त पर विचार करते हुए और योजना को उसके इच्छित उद्देश्य के साथ संरेखित करने और वर्तमान मामले में प्रचलित बुराइयों पर अंकुश लगाने के लिए, आर.टी.ई. अधिनियम और 2011 के आदेश के कार्यान्वयन को

सुनिश्चित करने के लिए इसके सही शब्दशः और भावना में लागू करना सुनिश्चित करने के लिए करना है के कार्यान्वन को सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित निर्देश अपने सच्चे अक्षरशः और भाव में पारित करना आवश्यक समझा जाता हैं:

i. रा.रा.क्षे. दिल्ली सरकार ने रा.रा.क्षे. दिल्ली में मौजूदा आर्थिक स्थितियों का आकलन करने और उसमें अन्य प्रासंगिक कारकों पर विचार करने के बाद 1 लाख रूपए प्रति वर्ष की माजूदा प्राराम्भिक आय को उस अनुरूप राशि तक बढाने के लिए यथासंभव शीघ्रता से निर्णय लेगी जो राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में योजना के इच्छित लाभार्थियों के जीवन स्तर के अनुरूप हो। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मानदंड वैज्ञानिक होने चाहिए और वास्तविक आंकड़ों पर आधारित होना चाहिए।

ii. जब तक उपरोक्त प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती और योजना में उचित संशोधन नहीं किया जाता है तब तक 2011 के आदेश के खंड 2(ग) के तहत आवश्यक आय को 1 लाख रूपए के बजाय 5 लाख रूपए तक बढ़ाकर जाना जाएगा क्योंकि अन्य सभी राज्यों में लगभग 8 लाख रूपए की सीमा है।

iii. उपरोक्त निर्देशों को तत्काल प्रभाव से लागू किया जाता है।

iv. रा.रा.क्षे. दिल्ली सरकार को स्व-घोषणा के तंत्र को तुरंत समाप्त करना चाहिए और 2011 के आदेश के खंड 6 के तहत स्कूलों में नि:शुल्क सीटों को जारी रखने के लिए एक उपयुक्त ढांचा लाना चाहिए।

v. रा.रा.क्षे. दिल्ली सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि डी.ओ.ई. नियमित अंतरालों पर दाखिलों का विधिवत सत्यापन करने के आदेश को, 2011 के खण्ड 5(ड) के तहत अपने शक्ति का विधिवत प्रयोग करेगा और यह सुनिश्चित करेगा की आपेक्षित पात्रता को पूरा किए बिना किसी को भी प्रवेश नहीं दिया जाए।

vi. उपरोक्त (iv) और (v) में दिए गए निर्देशों को उपयुक्त रूप से लागू करने के लिए डी.ओ.ई. आय सत्यापन और पात्रता मानदंड की नियमित निगरानी के लिए एक मानक संचालन प्रक्रिया (एस.ओ.पी.) तैयार करेगा।

120. उपरोक्त निर्देशों के साथ, याचिका उपरोक्त लागतों के साथ खारिज कर दी जाती है। लंबित आवेदनों का भी तदनुसार निपटान किया जाता है।

(पुरुषेंद्र कुमार कौरव)
न्यायाधीश

दिसंबर 05, 2023
पी/*एसएचएस*

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*